महाभारत

[सुंदर चित्रोंके साथ]

आर्योंका प्राचीन इतिहासिक महाकाव्य।

हम प्रतिमास १०० सौ पृष्ठों का एक अंक छाप रहे हैं।

इस समय तक आदिपर्व पृष्ठसंख्या ११२५ छप चुका है।

सभापर्व छप रहा है। यह भी दो मासमें संपूर्ण होगा।

आप शीघ्र ग्राहक बन जाइये।

१२०० बारह सौ पृष्ठोंका मूल्य म०आ० से ६) छह रु०और वी. पी. से ७)रु०है। आप म० आ० से रु० भेजेंगे तो आपका लाभ है, वी.पी.से आप का नुकसान है।

पीछेसे मूल्य बढेगा।

मंत्री —स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वर्ष ६
अंक २

क्रमांक
६२

माघ
सं० १९८१

फर्वरी
सन १९२५

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

हम तेरे ही हैं।

त्वज्जातास्त्वयि चरंति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ॥ तवेमे पृथिवि पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥

अथर्व. १२।१।१५

हे (पृथिवि) मातृभूमि ! हम सब (मर्त्याः) मनुष्य (त्वत्-जाताः) तुझमेही उत्पन्न हुए हैं, और (त्वयि चरति) तुझपरही चलते हैं, तूही दो पांव वालों और चार पांव वालोंको (बिभर्षि) धारण पोषण करती हो, जिन प्राणियों के लिये (अमृतं ज्योतिः) अमृतमय तेज उदय होनेवाला सूर्य अपने किरणोंसे फैलाता है। वे (पंच मानवाः) पांच प्रकारके मनुष्य (तव एव) तेरे ही हैं।

मातृभूमिके ही हम सुपुत्र हैं, हमारा सर्वस्व मातृभूमिके लिये अर्पण होना चाहिये यह भाव हरएक मनुष्यके मनमें स्थिर होना चाहिये।

सम्राट् का वध ।

साधारणतः आर्य धर्म शास्त्रमें " अराजक " लोगोंका सर्वत्र निषेध ही किया है । पुराणोंमें " नाऽविष्णुः पृथिवीपतिः" अर्थात् " विष्णु का अंश न होनेसे सम्राट् पद नहीं प्राप्त होता " ऐसा कह कर राजाकी शक्तीका अत्याधिक गौरव दर्शाया है । यद्यपि यह गौरव पुराणोंमें सर्वत्र है, तथापि " राजाकी शक्ति अनियंत्रित" है ऐसा किसीभी ग्रंथमें लिखा नहीं है । वेदमें भी—

राजा राष्ट्राणां पेशः ।

ऋग्वेद७।३४।११

" राष्ट्रका रूप अर्थात् राज्यकी सुंदरता राजा है । " इस मंत्रमें राजाको राष्ट्रका भूषण कहा है । इतना वर्णन होनेपर भी पुराणोंमें और इतिहासोंमें दुष्ट राजाओंका सर्वत्र निषेध ही किया है, प्रसंग विशेष में दुष्ट राजाओंका वध भी ऋषियोंने किया है । इस विषयमें वेन राजाका दृष्टांत सुप्रसिद्ध है ।

वेन राजाका वध ।

स्वायंभु मनुके वंशमें अंग नामक एक राजा था । इसका पुत्र वेन राजा अपने पिता के पश्चात् राज्यपर आगया । यह वेन राजा धर्म नियमानुसार राज्य चलाता नहीं था, इस लिये ऋषियोंने मिलकर दर्भास्त्रसे उनका वध किया । और उसके ज्येष्ठ पुत्रको नालायक होने के कारण शहरबदर करके, द्वितीय पुत्र पृथुको राजगद्दीपर बिठलाया । यह कथा विस्तार से महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण पद्मपुराण आदिमें है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि ऋषिमुनि सम्राट् का अत्यंत गौरव करते तो थे, परंतु उसके नालायक होनेपर उसका वधभी करते थे, और जो राजगद्दीके योग्य होगा, उसीको राज्य शासनमें नियुक्त करते थे । इसी नियमानुसार वेन के नालायक ज्येष्ठ पुत्रको राजगद्दी नहीं दी गई और द्वितीय पुत्रको दीगई। यह बात नालायक राजा के विषयमें होगई ।

नालायक राजाको इस प्रकार दंड करने में किसी भी सज्जन का मतभेद नहीं हो सकता । क्यों कि कोई भी

राजा क्यों न हो, वह विशेष कार्य करने के लिये ही राजगद्दीपर रखा जाता है। इस लिये जबतक वह उस कार्य को करेगा, तबतक ही वह राज्य पर रहेगा। जिस समयसे वह अपना कर्तव्य करना छोड देगा उस समयसे राजगद्दीपर रहनेका उसको अधिकार ही नहीं रहेगा इसी हेतुसे वेदमें राज्यारोहण समारंभ के प्रसंग के मंत्रोंमें कहा है कि —

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पंच देवीः। वर्ष्मन्राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि॥
अथर्व ३।४।२

"हे राजन्! राज्यके लिये (विशः) प्रजाएं (त्वां वृणतां) तुझकोही स्वीकार करें। पंचदिशाओंमें रहनेवाली सब प्रजाएं भी तेरा स्वीकार करें। उन प्रजाओंकी अनुमतिसे तू राज्यपर चढ और (उग्रः) शूर बनकर सब प्रजाओंको (वसूनि विभज) धनका योग्य विभाग दो।" तथा—

ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥
अथर्व. ६।८८।३

"हे राजन्! तेरी स्थिरता के लिये (इह) इस राष्ट्रमें (समितिः) राष्ट्रकी सभा तेरी सहायक हो।"

यह उपदेश स्पष्ट बता रहा है कि, वैदिक धर्मके अनुसार जनताके मतानुकूल चलने तक ही राजाके आधीन राज-

गद्दी रह सकती है। जिस समयसे वह प्रजाके मतानुसार नहीं चलेगा, उस समयसे वह राज्यसे भी भ्रष्ट हो सकता है। कई आर्य राजाओंका इस प्रकार प्रजा विरोधके कारण नाश हुआ था। और वह उनका नाश पूर्णरूपसे धर्मानुकूल ही हुआ था।

परंतु इन ऋषिमुनियोंको जिन्होंने कि वेनराजाका वध किया था उनको किसी भी इतिहास लेखक ने "अराजक" नहीं कहा। आजकल युरोपमें पाशवी सभ्यताके बढ जानेके कारण अराजकता का पंथ वहां शुरू हुआ है। उस प्रकार के मतका अंशभी पूर्वोक्त ऋषि मुनियोंके मनमें नहीं था। तथापि युरोपके समानही अराजकोंका षडयंत्र महाभारतमें दिखाई देता है। इस का इस लेखमें विशेष विचार करना है। देखिये—

अराजकोंका षड्यंत्र।

भारत वर्षमें "सर्प" नामकी एक मानव जाती थी यह बात प्रसिद्ध है। सर्पस्त्रियां आर्योंके घरमें ब्याही जाती थीं, इस प्रकारके विवाह महाभारतमें कई है। दिग्विजयी आर्य जातीने सर्प जातिका पराभव किया था और सर्पजाती प्रायः परतंत्र और सर्वत्र अधिकार हीन सी बनगयी थी। महाभारतके पूर्वकालकी यह इतिहासिक घटना महाभारत काव्यमें स्पष्टतासे दिखाई देती है।

सर्प जाती की स्त्रियोंका विवाह आर्य पुरुषोंसे होता था, परंतु आर्य स्त्रियोंका विवाह सर्प जातीके पुरुषसे होता नहीं था। इस से भी सिद्ध होता है कि, सर्प जाती की राजकीय अवस्था अत्यंत निकृष्ट होगई थी, इसीलिये सर्प स्त्रियोंको आर्य पुरुषोंसे शरीर संबंध होनेमें लाभ प्रतीत होता था, वैसा लाभ आर्य जातिकी स्त्रियोंको सर्प जातीके पुरुषोंके साथ विवाह संबंध होनेसे नहीं प्रतीत होता था।

पराजित और परतंत्र जातीकी अधोगति की यही सीमा है कि, जिस समय उस परतंत्र जातीकी स्त्रियां अपनी जातीकी परतंत्रता करनेवाली और अपनेपर हुकुमत करनेवाली दिग्विजयी जातिके पुरुषों से शरीर संबंध करने में अपना हित मानने लग जांय। जब यह अवस्था हो जाय तत्पश्चात् उस पराधीन जातीके अभ्युदयकी कोई आशा नहीं समझनी चाहिये। क्योंकि स्त्रियोंके अंदरका स्वामिमान नष्ट हुआ और जातीयता की कल्पना माताओंके शुद्ध अंतःकरणोंसे भी हट गयी, तो संतान भी वैसेही स्वाभिमान शून्यही उत्पन्न होंगे, इसमें संदेह ही क्या हो सकता है! इसी कारण सर्प जातीकी जो अधोगति पांडवोंके दिग्विजय के सबब होगई, उस पराधीनतासे फिर सर्पजातीकी उन्नति इस समयतक नहीं हुई। पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये कि, सर्पजातीकी दास्यवृत्तिकी यह अंतिम सीमा हो चुकी थी।

प्रायः अराजक "दबी हुई जाती" में ही उत्पन्न होते हैं। जब न्याय्य और धर्म्य मार्गोंसे अपनी उन्नति होनेके सब मार्ग बंद हो जाते हैं, विजयी लोग दबी हुई जातीको सब प्रकारकी उन्नति के मार्गपर चलनेमें चारों ओर से रोक लेते हैं, तब नवयुवकों के अंदर "अराजकता के विचार" उत्पन्न होते हैं और वे नवयुवक विजयी जातीके प्रमुख वीरों और राजाओंका घातपात जिसकिसी मार्ग से बने करनेको उद्यक्त हो जाते हैं। यही बात सर्प जातीके अराजक नवयुवकों ने की और इन्होंने आर्य सम्राट् राजाधिराज परीक्षित महाराजका वध राजगृहमें ही किया!!!

सम्राट् परीक्षित का वध।

सर्प जातीके नवयुवक राजा परीक्षित के दरबार में संन्यासियोंके वेषसे आगये। क्योंकि तापसी संन्यासी और साधुओंको आर्य राजाओंके भवनों म कभी भी प्रतिबंध नहीं था। देखिये इसका वर्णन--

जगाम तक्षकस्तूर्णं नगरं नागसाह्वयम्॥ २१॥ अथ शुश्राव गच्छन्स तक्षको जगतीपतिम्। मंत्रैर्गदैर्विषहरै रक्ष्यमाणं प्रयत्नतः॥ २२॥ स चिन्तयामास तदा मायायोगेन पार्थिवः। मया वंचयि-

तव्योऽसौ क उपायो भवेदिति ॥ २३ ॥ ततस्तापसरूपेण प्राहिणोत्स भुजंगमान् । फलदर्भोदकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः ॥२४॥

तक्षक उवाच ।

गच्छध्वं यूयमव्यग्रा राजानं कार्यवत्तया । फलपुष्पोदकं नाम प्रतिग्राहयितुं नृपम् ॥ २५ ॥ ते तक्षकसमादिष्टास्तथा चक्रुर्भुजंगमाः । उपनिन्युस्तथा राज्ञे दर्भानापः फलानि च ॥ २६ ॥ तच्च सर्वं स राजेन्द्रः प्रतिजग्राह वीर्यवान् । कृत्वा तेषां च कार्याणि गम्यतामित्युवाच तान् ॥ २७ ॥

म. भा. आदि. ४३

" तक्षकसर्प हस्तिनापुर को पधारा उन्होंने मार्ग में सुना कि राजा बडे यत्नसे सुरक्षित रहे है । तब सोचने लगा कि, कपटसे राजाको ठगना पडेगा । अनंतर तक्षक सर्पने अपने साथी सर्पोंको तपस्वीका रूप धारण कर तथा फल, दर्भ और उदक लेकर राजाके पास जानेको कहा । और साथ ही सावधानी की सूचना भी दी कि तुम हडबडी न दिखा कर किसी काम के बहानेसे राजाके पास जाकर उनको फल फूल और जल देना । सर्पोंने तक्षक सर्प की आज्ञानुसार कार्य किया और राजाको फलफूल और जल दिया । वीर्यशाली राजा परीक्षित् ने वह सब लेलिये और उनका कार्य पूर्ण कर चले जानेकी आज्ञा दी । "

इन श्लोकोंमें सर्प जातीके अराजकों के षड्यंत्र का ठीक ठीक पता लगता है । (१) सर्प जातीके कई नवयुवक आर्य संन्यासीके समान वेष धारण करते हैं, (२) राजाको भट करने और आशीर्वाद देनेके मिषसे राज दर्बार में प्रवेश करते हैं, (३) राजदर्बार में इन कपटी साधुओं का प्रवेश होता है, (४) आर्य राजा उन तापसियोंके विषयमें किसी प्रकार संदेह नहीं करता ॥ परंतु उन साधुओं के बीच में ही एक मुख्य " अराजक सर्प" था, अन्य कपटी अराजक साधु फल देकर चले जाने पर भी वह वहां ही रहा था और योग्य समय की प्रतीक्षा कर रहा था । इतनेमें सूर्यास्तका समय हुआ और प्रायः सायं संध्या की उपासना करनेके लिये राजदर्बार विसर्जन करने की गडबड हो रहीथी, ऐसे समय में एकायक वह अराजक सर्प उठा और उसने सम्राट् परीक्षित का वध किया—

वेष्टयित्वा च वेगेन विनद्य च महास्वनम् । अदशत्पृथिवीपालं तक्षकः पन्नगेश्वरः ॥ ३७ ॥

म. भा आदि ४३

" अराजक सर्पने अपने शरीरसे महाराज परीक्षित को वेगसे घेर कर बडी गर्जना के साथ उसको काट लिया । "

अर्थात् वह वध किसी शस्त्रसे नहीं

किया गया, परंतु सम्राट् को भूमिपर गिराकर उसका गला घूट लिया। सर्प जातीके नवयुवकोंके मनमें आर्यराजाओंके विषयमें इतना द्वेष था कि, वे आर्य राजाओंको गला घूट कर अथवा अपने मुखसे उनको काट कर उनकी जान लेने को प्रवृत्त होते थे!!! ऐसा क्यों हुआ, आर्य राजाओंने ऐसा कौनसा भयानक अत्याचार सर्पजातीपर किया था, इसका विचार करना चाहिये। यह देखनेके पूर्व एक दो बातें पहिले देखनी है, वे यह हैं—

राजाके मूर्च्छे मंत्री।
ते तथा मंत्रिणो दृष्ट्वा भोगेन परिवेष्टितम्। विषण्णवदनाः सर्वे रुरुदुर्भृशदुःखिताः॥ १॥ तं तु नादं ततः श्रुत्वा मंत्रिणस्ते प्रदुद्रुवुः।

म. भा. आदि. ४४

"मंत्रीगण राजा को उस प्रकार घिरे हुए देख कर अति दुःखी होकर और मुख को खेदयुक्त बनाकर राने लगे। आगे उसकी गर्जना का शब्द सुनकर सब भागने लगे।"

देखिये! ये दर्बारके मंत्रीलोग हैं! राजाके शरीर पर शत्रुका आक्रमण हुआ है, वह अराजक नवयुवक राजाका गला घूंट रहा है, यह देखते हुए ये मंत्री रोते और भागते हैं!!! कोई एक-भी अपनी तलवार उस पर नहीं चलाता! क्या इससे अधिक मतिहीनता की सीमा हो सकती है? जहां ऐसे दुर्बल मंत्री होंगे, वहां सम्राट् जीवित रह ही नहीं सकता। और साम्राज्य भी वहां अधिक देर तक रह नहीं सकता। पांडवोंके पश्चात् दूसरे ही पुश्त में इतना अधःपात हुआ था, यह यहां विचारसे ध्यानमें लाना चाहिये।

उक्त प्रकार उर्प जातीके अराजक नवयुवकने राजाको अपने मुखसे काट कर मारा और वह भाग गया। और आर्य राजधानीमें वह पकडा भी नहीं गया, यह व्यवस्था हस्तिनापुर की थी!! ऐसी अंदाधुंदी यदि किसी राजधानीमें रही, तो उनका साम्राज्य कैसे बढ सकता है! जागरूकता से अपना बचाव करनेकी शक्ति तो कमसे कम चाहिये।

अराजक षडयंत्र का पता।

अराजक सर्पोंके षडयंत्र का पता राजाको सात दिन पाहिले लगचुका था। और सम्राट् अपनी रक्षा भी कर रहा था। इतनी रक्षाका प्रबंध होनेपर भी कपटी सर्प संन्यासी दर्बारमें प्रवेश करते हैं, राजाके पास पहुंचते हैं और उनमेंसे एक राजाके शरीर पर हमला करता है; और उसका वध करता है, यह बात विशेष लक्ष्यपूर्वक देखनी चाहिये, तो भारतीय सम्राटोंकी दक्षताहीनता का पता लग जायगा। यदि अपने वध के लिये कई लोग षड्- यंत्र रच रहे हैं, तो

साधु हो, परीक्षा किये विना दूर्बारमें प्रविष्ट होने देना यह दक्षताहीनता का ही द्योतक है ।

अराजक सर्पोंके षड्यंत्रका पता ऋषि मुनियोंके नवयुवकों को भी था । क्यों कि एक ऋषिकुमार ने ही पहिले कह दिया था कि, "आजसे सातवे दिन एक सर्प आकर परीक्षित का वध करेगा ।" देखिये—

तं पापमतिसंक्रुद्धस्तक्षकः पन्नगेश्वरः । सप्तरात्रादितो नेता यमस्य सदनं प्रति ॥ द्विजानामवमंतारं कुरूणामयशस्करम ॥ १४ ॥

म. भा. आदि. ४१

"क्रोधित तक्षक सर्प उस पापी, द्विजोंके अपमान करनेवाले, कुरुकुलके कलंक रूपी राजाको सात रातोंके बीचमें यमके घर पहुंचायेगा ।"

यह ऋषिकुमार का वाक्य अराजकों के षड्यंत्रकी बात स्पष्ट बता रहा है । नवयुवकों के अंदर कईयोंको इसका पता होगा ऐसा इससे स्पष्ट दिखाई देता है । सम्राट् के वधका समय भी करीब निश्चित साही होगया था । उक्त ऋषिकुमार के कथनमें सम्राट् परीक्षित के लिये "(१) पापी, (२) द्विजानां अवमंता, (३) कुरूणां अयशस्कर" ये तीन विशेषण हैं । इनमें भी कुछ भाव होगा ही । क्यों कि राजा परीक्षित् ने शमीक नामक एक शांत मौनव्रतधारी तपस्वी के गलेमें मृत सर्प लटका दिया था । कारण इतनाही था, की इसके प्रश्न का उत्तर उस तपस्वीने दिया नहीं ! जो राजा अपने प्रश्नका उत्तर न देनेके कारण मौनव्रती तापसीका ऐसा अपमान कर सकता है, उसके विषयमें ब्राह्मण समाज में भी कितनासा आदर रह सकता है । इसी कारण उक्त ब्राह्मण कुमारने उक्त विशेषण परीक्षित के लिये लगाये हैं । अर्थात परीक्षित् के राज्यमें अराजक नवयुवकों का षड्यंत्र बढ गया था, और आर्य ब्राह्मण समाजमें भी उनका आदर थोडासा न्यून हुआ था । यद्यपि बडे श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग वह अपना अनादर व्यक्त नहीं करते थे, तथापि कुमार लोग उक्त प्रकार बोलनेमें संकोच नहीं करते थे । यह अवस्था उस समयकी थी ।

जब ऋषिकुमार का कथन उसके पिता शमीक ऋषीको ज्ञात हुआ, तब उस तपस्वीको बडा दुःख हुआ और उसने सम्राट् परीक्षित को अपनी रक्षा करनेकी सूचना दी । और इस सूचना के अनुसार ही सम्राट् अपनी रक्षा कर रहा था, परंतु मूर्ख मंत्रियों की दक्षताहीनताके कारण पूर्वोक्त प्रकार अराजक नवयुवक के द्वारा वह मारा गया । इस रीतिसे एक सर्प जातीके अराजक नवयुवक ने आर्य सम्राट् परीक्षित का वध किया ।

इससे पूर्व भी एकबार प्रयत्न।

आर्य राजाका वध करनेका प्रयत्न सर्प जातीयोंने अनेकवार किया था, उस में यह अंतिम प्रयत्न था। और इस अंतिम प्रयत्न के समय सर्प जातीके युवक की इच्छा पूर्ण होगई, इससे पूर्व जो जो प्रयत्न किये गये थे, उन सबमें उनको सफलता नहीं हुई थी। इसका कारण इतनाही है कि, परीक्षित राजा स्वसंरक्षण के लिये समर्थ नहीं था, और इसके पूर्वजों में स्वसंरक्षण करते हुए अपना साम्राज्य बढाने की शक्ति विशेष थी। सर्प जातीके अराजकों का षडयंत्र पहिले भी था, परंतु आर्योंकी वीरता विशेष रहने के कारण वे अराजक उनका कुछ भी बिगाड नहीं सकेथे, परंतु जिस समय आर्य राजाओं में वीरताकी न्यूनता और भोग भोगनेकी प्रधानता होगई, तब अराजकों की सफलता होने लगी। प्रायः अराजकों के शस्त्रोंका प्रयोग ऐसे ही दुर्बल राजाओं पर होता है। अब इसके पूर्वके षडयंत्रका थोडासा वर्णन देखना चाहिये।

अर्जुन और कर्णका युद्ध होने के समय एक अराजक सर्प नवयुवक अर्जुनका वध करनेकी इच्छासे कर्णकी सहायता करनेके लिये कर्ण के पास पहुंचा था और विशेष प्रकार के बाण भी उन्होंने वीर कर्णको दे दिये थे। देखिये-

ततस्तु पातालतले शयानो नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥ १२ ॥ अथोत्पपातोर्ध्वगतिर्जवेन संदृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥ १३ ॥ अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै पार्थस्य वैरप्रतियातनाय। सचिन्त्य तूर्णं प्रविवेश चैव कर्णस्य राजन् शररूपधारी ॥ १४ ॥

म. भा. कर्ण. अ. ९

" अर्जुनके साथ वैर करनेवाला पाताल देश निवासी सर्पजातीका एक अश्वसेन नामक मनुष्य, कर्ण और अर्जुन का युद्ध देख कर, अतिवेगसे ऊपर आया अर्जुन का बदला लेने के लिये यही उत्तम समय है, ऐसा देखकर कर्णके बाणों के संचयमें घुसा। "

इस वर्णन से स्पष्ट पता लगता है कि, अर्जुन के साथ वैर करने वाले सर्प थे। अर्जुन का नाश करने के लिये योग्य समय की प्रतीक्षा ये अराजक सर्प कर रहे थे। कर्ण और अर्जुन का युद्ध हो रहा था, यह देख कर इस अवसर से लाभ उठानेका निश्चय इन अराजक सर्पोंने किया।

यहां पाठक देख लें कि इन अराजक सर्प युवकोंकी कितनी चतुराई थी। ये भीष्म, द्रोण आदि वीरों के साथ मिलकर अर्जुन का नाश करनेके लिये उद्युक्त नहीं हुए। क्यों कि ये अच्छी प्रकार जानते थे कि भीष्मद्रोणादी वृद्ध महारथी

अर्जुन का नाश कभी नहीं करेंगे। आर इनके साथ मिलनेसे अपनाही नाश होगा ।

कर्ण के साथ मिलनेमें इनको कोई धोखा नहीं था । क्योंकि अर्जुन का वध करने की हार्दिक इच्छा कर्णके अंदर थी, कर्ण का कई वर्षोंसे इसी उद्देश्यसे प्रयत्न भी था । इसी कार्य के लिये विशेष प्रकार के शस्त्रास्त्र कर्णने अपने पास जमा करके रखे थे और कौरवोंके पास अर्जुनका सच्चा विद्वेषी कर्ण के सिवाय दूसरा कोई नहीं था । इसी लिये समद्वेषी सर्प युवक कर्णके पास आया और कर्ण के साथ मिलकर अर्जुन का नाश करनेका यत्न करने लगा । कई विशेष प्रकारके विषैले बाण तैयार करके इस सर्पने लाये थे और उसने इन बाणोंको कर्णकी तूणीरमें रख दिये । मनशा यह था कि, इन बाणोंसे अर्जुनका वध हो जावे ।

उनमेंसे एक बाण कर्णने चलाया, परंतु वह अर्जुन के मुकुट पर लगा । उस बाणमें ऐसा कुछ मसाला भरा था कि, उस कारण अर्जुन का मुकुट ही जलगया ! देखिये—

> स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः । महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन किरीटमाहत्य ततो व्यतीयात् ॥ ४३ ॥ तं चापि दग्ध्वा तपनीयचित्रं किरीटमाकृष्य तदर्जुनस्य । इयेष गंतुं पुनरेव तूर्णं दृष्ट्वा कर्णेन ततोऽस्य भीषम् ॥ ४४ ॥
>
> म. भा. कर्ण. ९०

" कर्णके हाथसे चलाया हुआ वह बाण अर्जुन के मुकुट पर लगा और उस कारण उसका मुकुट जल गया ! " इस प्रकारके भयानक विषमय मसालेसे वह बाण तैयार किया था । यदि वह बाण शरीरपर लगता तो शरीर भी इसी प्रकार जल जाता ! अराजक युवकों की वह कपट युक्ति इस प्रकार भयानक थी । परंतु इसवार अर्जुन का बचाव हुआ, फिर भी वही अराजक सर्प कर्णकी तूणीर के पास आगया और बोला कि—

> मुक्तस्त्वयाऽहं त्वसमीक्ष्य कर्ण शिरोहृतं यन्न मयाऽर्जुनस्य । समीक्ष्य मां मुंच रणे त्वमाशु हंतास्मि शत्रुं तव चात्मनश्च ॥ ४५ ॥
>
> म. भा. कर्ण० ९०

" हे कर्ण ! पहिलीवार तुमने ठीक न देख कर बाण छोड दिया, इस लिये यह बाण सिरपर न लग के मुकुटपर लगा । अब की वार पुनः इसे ऐसा देख कर चला, कि जिससे तेरे और मेरे दोनों के शत्रु अर्जुन का हनन ठीक प्रकार होजाय । " यह भाषण श्रवण करके वीर कर्णको बडा क्रोध आया, क्यों कि कर्ण जैसे अद्वितीय वीरको यह युवक बोला कि " पहिलीवार ठीक देख कर बाण नहीं चलाया, अबकी वार ठीक

देख कर चला." ये शब्द किसी भी वीर को अपमानास्पद ही हैं। और आत्मसंमानी कर्णके लिये तो ये शब्द असह्य ही हुए। ये कठोर शब्द सुन कर कर्णने पूछा कि " तू कौन है ? " उत्तर में उसने कहा—

नागोऽब्रवीद्विद्धि कृतागसं मां पार्थेन मातुर्वधजातवैरम्॥
म. भा. कर्ण. ९०।४६

" मेरी माताका वध करनेके कारण अर्जुनने मेरा बडा अपराध किया है " और इसलिये मैं अर्जुन का बदला लेना चाहता हूं। यह बात सुननेके पश्चात् आत्मसंमानी वीर कर्ण आर्य वीरके समान बोला—

न नाग कर्णोऽद्य रणे परस्य बलं समास्थाय जयं बुभूषेत्।
म. भा. कर्ण. ९०

"हे सर्प ! वीर कर्ण दूसरेकी शक्ति का आश्रय करके जय प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करेगा।" अर्थात् आर्य जातिके शत्रुकी सहायता लेकर आर्यवीर का नाश करनेकी इच्छा करनेवाला कर्ण नहीं है। कर्ण के अंदर इतनी शक्ति है कि, जिससे वह अपने शत्रुका पराजय कर सकता है। यह कर्णका भाषण श्रवण कर अराजक सर्प युवक हताश होकर, अब कर्णके आश्रय की आशा छोड कर, स्वयंही अर्जुन का बदला लेनेका यत्न करने के लिये प्रवृत्त हुआ-

इत्येवमुक्तो युधि नागराजः कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम्। स्वयं प्रायात्पार्थवधाय राजन् कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः॥ ततः कृष्णः पार्थमुवाच संख्ये महोरगं कृतवैरं जहि त्वम्॥ ५०॥
म. भा. कर्ण. ९०

" यह कर्णका भाषण सुन कर वह सर्प अर्जुनका वध स्वयं करनेकी इच्छासे अपना रूप उग्र बनाकर अर्जुन पर दौडा। यह देख कर श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले, कि हे अर्जुन ! यह तेरे ऊपर हमला करने के लिये सर्प आ रहा है, इस वैरी का तू हनन कर। "

यहां तक सर्प कुमारों के अंदर अर्जुन के विषयमें द्वेष था। और इस प्रकार ये नवयुवक बदला लेनेके लिये प्रयत्न करते थे। परंतु अर्जुनादि आर्य वीरोंका अद्वितीय प्रताप होनेके कारण उनकी इच्छा सफल नहीं होती थी। इसी रीतिसे यहां भी उक्त अराजक सर्पके प्रयत्न सफल नहीं हुए। कर्णने उसकी सहायता करनेसे इनकार किया और इस लिये वह स्वयं अर्जुनपर दौडा, परंतु अर्जुनने एक बाणसे ही उसको यमराज का पाहुना बना दिया !

सर्प अराजक क्यों बने ?

यहां प्रश्न होता है कि, सर्प जातीके अंदर इतना वैर आर्य राजाओं के संबंध में क्यों था ? आर्य राजाओंने सर्प

जातीके ऊपर कौनसा अत्याचार किया था, कि जिस कारण सर्प जातीके लोग राजवध करने के लिये भी प्रवृत्त हुए थे ? इसका उत्तर महाभारत लेखक ही देता है—

> योऽसौ त्वया खांडवे चित्रभानुं संतर्पयानेन धनुर्धरेण। वियद्‌गतो जननीगुप्तदेहो ह्येकरूपं निहताऽस्य माता ॥ ५२ ॥ स एष तद्वैरमनुस्मरन्वै त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम् ।
>
> म. भा. कर्ण. ९०

श्रीकृष्ण कहते हैं, "हे अर्जुन ! खांडव वन का दाह करनेके समय इसीकी माताको तुमने हनन किया था, उस सर्पी का यह पुत्र अश्वसेन सर्प उस वैर का स्मरण करके अपना वध करनेके लिये ही मानो तेरी प्रार्थना कर रहा है।"

सर्पके भाषण में भी यही बात है । सर्पजातीपर जो अत्याचार दिग्विजयी अर्जुनने खांडववनके दाह करने के समय किये थे, उन अत्याचारोंके कारण ही सर्पजातीके अंदर आर्योंके विषयमें विशेषतः अर्जुन के वंशजोंके विषयमें बड़ा ही वैर भाव हुआ था । अर्जुन ने खांडव वन में क्या किया था, इस का अब विचार करना चाहिये । उसका इतिहास यह है—

खांडव वनका दाह ।

इंद्रप्रस्थ और खांडव प्रस्थ ये दो विभाग पंजाब प्रांत के थे । देहली के पासका भाग इंद्रप्रस्थ नामसे प्रसिद्ध था । इसमें आबादी होगयी थी और नगरादि बसे थे । खांडव प्रस्थमें बड़ाभारी जंगल था, करीब दोतीन सौ मील का विस्तार इस महावन का था । इस वन पर इस समय शासनाधिकार तिब्बत निवासी देवसम्राट् इंद्र का था और इंद्रके शासनके नीचे असुर, दानव, राक्षस, सर्प, आदि जातियां वहां रहती थीं।

अर्जुन के मनमें वहां आर्योंकी बस्ती करनेका विचार आगया, परंतु वहां बस्ती करके रहना सुगम कार्य नहीं था । असुर राक्षसों से नाना प्रकार के कष्ट होना संभव था । इस लिये अर्जुन और श्रीकृष्णने विचार कर यह निश्चय किया कि इस खांडव वन को आग लगादी जाय । इस निश्चयके अनुसार उन्होंने उस वनको चारों ओरसे आग लगादी और जहां जहांसे भागनेके मार्ग थे उन पर स्वयं शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज होकर रहे । इससे यह हुआ कि बहुतही जातियां अग्निके कारण जल मरीं, जिन्होंने भागने का यत्न किया वे इन अर्जुनादि आर्य वीरोंके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारेगये । इस प्रकार संपूर्ण खांडववन में रहने वाली जातियोंका क्रूरताके साथ अर्जुन ने नाश किया !!!

खांडववन पंद्रह दिनतक चल रहा था, इससे वनके विस्तार की कल्पना हो

सकती है। एसे विशाल वन में कितनी जातियां मारी और जलायीं गई, इसका कोई हिसाबही नहीं। इसका वर्णन आदिपर्वके अंतमें पाठक देख सकते हैं, यहां थोडासा नमूना देखिये—

तौ रथाभ्यां रथिश्रेष्ठौ दावस्याभ-
यतः स्थितौ। दिक्षु सर्वासु भूता-
नां चक्राते कदनं महत् ॥ १ ॥
समालिंग्य सुतानन्ये पितॄन्भ्रातॄन-
थाऽपरे। त्यक्तुं न शेकुः स्नेहेन
तत्रैव निधनं गताः ॥ ६ ॥

म. भा. आदि २२८

" वन के दाह होनेके समय एक ओर अर्जुन और दूसरी ओर श्रीकृष्ण रहेथे और वे वहां के रहनेवालों का नाश करने लगे। किसीने बच्चेने, किसी ने पितासे किसी किसीने भाइस लिपट कर वास स्थल ही म प्राण छोड दिये। पर स्नेहवश उनको छोड नहीं सके।" इस संहार का वर्णन देवोंके दूतोंने भगवान इंद्रके पास निम्न प्रकार किया—

किं न्विमे मानवाः सर्वे दह्यन्ते
चित्रभानुना। कच्चिन्न संक्षयः
प्राप्तो लोकानाममरेश्वर ॥ १७ ॥

म. भा. आदि. २२८

" हे इंद्र! अग्नि इन मानवों को जला रहा है जैसा कि प्रलय ही आगया है।" इसके पश्चात् कृष्ण और अर्जुन के साथ देवोंका युद्ध हुआ, देवो का पूर्ण पराजय हुआ, देव तिब्बतमें भागगये और अर्जुन का अधिकार खांडव प्रस्थ देश पर होगया। इस वनमें सहस्रों अनार्य जातिके लोगो का नाश हुआ। बडी कठिनतासे छः मनुष्य बचे...

तस्मिन्वने दह्यमाने षडग्निर्न ददा-
ह च। अश्वसेनं मयं चैव
चतुरः शार्ङ्गकांस्तथा ॥ ४७ ॥

म. भा. आद. २३०

"अश्वसेन सर्प जातीका युवक, मय ना मक असुर (जो बडा इंजिनियर था) ये दो और चार ब्राह्मण पुत्र शार्ङ्गक ये छः बचे।" अश्वसेन का गादम लकर माताने बचाया, परंतु अर्जुनने उस सर्पी स्त्रीपर भी शस्त्र चलाया और स्त्रीवध भी किया!!! मयासुर बडा भाग असुर जातीका इंजिनियर था इसको बचाया, इसने आगे जाकर प्रत्युपकार करनेके लिये एक बडा मंदिर पांडवोंके लिये बना दिया। अन्य चार ब्राह्मण पुत्र थे इस कारण बच। अन्य सर्प, राक्षस और असुर कितने मरे, जले और मारे गये इसका कोई हिसाब ही नहीं।

केवल साम्राज्य बढानेके लिये।

अपना साम्राज्य बढानेके लिये इतनी क्रूरतासे अर्जुन और श्री कृष्णने काम किया और जिस संहारमे बाल, वृद्ध, गर्भिणी स्त्रियां आदि कोभी नहीं छोडा! इस रीतिसे पांडवोंने अपना राज्य बढाया, यह कारण है कि, सर्प जातीके नवयुवक जोशसे अराजक बन कर अर्जुन

और उसके वंशजों के पीछे पडे थे।

अश्वसेन ही कर्णके साथ मिलकर अर्जुनके वध का प्रयत्न करता रहा, परंतु अर्जुन के बाणसे वही मर गया। जिस समय खांडव वन जलाया गया, उस समय सर्पराज तक्षक खांडव वनमें नहीं था, वह इंद्र प्रस्थमें कुछ कार्य के लिये आया था, इस लिये बचगया। परंतु उसके मनमें अपनी जातीका इतनी क्रूरतासे अर्जुनने संहार किया इस लिये बडा वैर था। प्रयत्न करनेपर भी अर्जुन मारा नहीं गया, अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु बालपनमें ही कौरव वीरोंसे मारा गया, इस लिये अर्जुन के पोते पर अर्थात् सम्राट् परीक्षित पर पूर्वोक्त रीतिसे हमला करके सर्प जातीके लोगोंने उसका वध किया और इस प्रकार सम्राट्का वध करके सर्पोंने अर्जुन के किये अत्याचार का बदला लिया।

अराजक सर्पोंका प्रयत्न बदला लेनेके लिये इस प्रकार तीन पुश्तों तक लगातार चल रहा। परंतु परीक्षित के समय वे सफल होगये। सफल होकर भी क्या हुआ? आर्योंने मिलकर पुनः सर्प सत्र द्वारा सर्प जातीका भयंकर संहार किया। वह संहार इतना हुआ कि वह सर्पजाती इस समय तक अपना सिर भी ऊपर नहीं उठा सकी।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि, दिग्वि-

जयी जातीके वीरों द्वारा जो अत्याचार पराजित जातीपर होते हैं, उनका बदला अराजकीय स्वरूपके अत्याचारों द्वारा लेनेका यत्न करनेसे, पराजित जातीका कदापि उद्धार होने की संभावना नहीं है। अराजकता के अत्याचार जो करते हैं, उनके उद्देश्य कुछ भी क्यों न हों, वे अत्याचार करने वाले अराजक अपने अत्याचारोंके कारण अपनी जातीकी उन्नति नहीं कर सकते। इस लिये पददलित जातियों को उचित है कि वे अपनी प्रवृत्ति अराजकीय अत्याचारोंकी ओर न झुकाकर, दूसरे अहिंसामय अनत्याचारी मार्गों का ही आक्रमण करके अपनी जातीय उन्नतिका साधन करें।

महाभारतसे यह बोध मिलता है। पाठक इसका विचार करें।

सारांश।

(१) दिग्विजयी जाती दलित जातीपर अत्याचार करती है, और अपना साम्राज्य बढाती है, इस कारण पददलित जातीके लोग अराजक बनते हैं, अर्थात् अराजकता का दोष पददलित जातिके पास नहीं होता है, परंतु दिग्विजयी जाती के क्रूर व्यवहार में होता है।

(२) अराजक वृत्तिके अत्याचारों से उन्नतिकी संभावना नहीं है, परंतु नुकसानही अधिक है, इस लिये अनत्याचारी मार्ग ही प्रशस्त है।

सर्प जाति।

सर्प जाती कौन थी, इसका भी यहां विचार करना चाहिये।

"सर्प" शब्द का अर्थ "हट, दूर हो, दूर खडा रह" ऐसा है। यह क्रियावाचक शब्द है। आर्यजाती इन को घृणाकी दृष्टिसे देखती थी, इस लिये जिस प्रकार दिग्विजयी युरोपीयन लोग इस समय अफ्रिकामें हिंदुस्थानियोंको रास्तोंपर से चलने नहीं देते, शहरों में बसने नहीं देते, गाडीयोंमें बैठने नहीं देते अर्थात हरएक समय "दूरखडा रह" ऐसाही कहते हैं, उसी प्रकार दिग्विजयी आर्यलोग हीन जातियोंको कहा करते थे। वे हीन लोग ही "सर्प" हैं। इस जाती पर कितना अत्याचार हुआ इसका थोडासा वर्णन इस लेखमें किया ही है।

अस्तु। तात्पर्य यह है कि, पददलित जातिके लोगोंको यदि सचमुच अपनी उन्नति करना है, तो अराजक वृत्तिसे अत्याचार करके किसी सम्राट् का, या किसी ओहदेदारका, वध करनेसे वह उन्नति प्राप्त नहीं होगी। उनको अपनी उन्नति करने के लिये अनत्याचारी अहिंसामय धर्म मार्गोंकाही अवलंबन करना चाहिये। यह बात महाभारत में अराजक सर्पोंके षड्यन्त्रके वृत्तांतसे कही है। पाठक इसका विचार करें और उचित बोध ले लें।

वैदिक—गीत

(कवि.—गणेशदत्तशर्मा आगर मालवा)

निर्वैरता।

ॐ असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु॥ नाना वीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी यः प्रथतां राध्यतां नः॥ अ. १२।१।२

अर्थः—

(यस्याः) जिसमातृभूमिके (मानवानां) मनुष्योंके (बध्यतः) अंदर (उद्वतः) उच्चता (प्र-वतः) नीचता तथा (समं) समता के विषयमें (बहु) बहुत [अ-सं-बाधं) निर्वैरता है, और (या) जो (नानावीर्या) विविध वीर्यगुणों से युक्त (ओषधीः) वनस्पतियोंको (बिभर्ति) धारण पोषण करती है वह (नः पृथिवी) हमारी मातृभूमि (नःप्रथतां) हमारी कीर्तिको (राध्यतां) सिद्धकरे।

उड्डियान (खड़े होकर)

उड्डियान (शीर्षासनमें)

उड्डियान (बैठकर)

मनोरंजन प्रेस, मुंबई ४.

उड्डियान (पालथी मारकर)

सर्वांगासन (तिरछा दृश्य)

मनोरंजन प्रेस, मुंबई ४.

सर्वांगासन (खुले हाथ)

सर्वांगासन (पीछेका दृश्य)
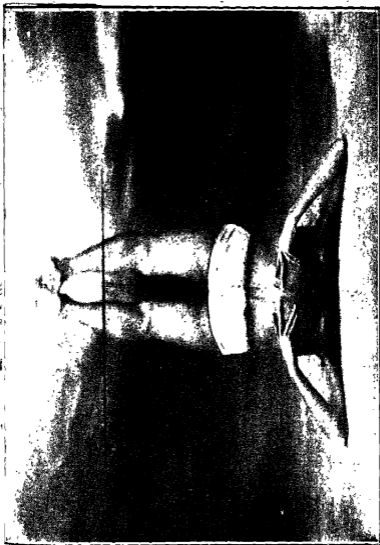
सर्वांगासन (खुले हाथ)

(सीतावृत्त)

मातृभूमी म वस ज्ञानी तथा जो शूरवा ।
और जो व्यापारप्रेमी शिल्पमें हो दक्ष जो ॥
हो न ईर्षा द्वेष का औ शत्रुताका लेशभी ।
उच्च हूं मैं नीच है वो भाव ऐसे हो नहीं ॥ १ ॥
हीनता क हीनता के औ घृणाके भावको ।
राष्ट्र में रक्खो नहीं ये बात सची मानलो ॥
जो बनेगा राष्ट्र ऐसा वो सदा फूले फल ।
हों यशस्वी देशवासी शान्तिका साम्राज्य हो ॥ २ ॥

दीर्घायु

ॐ इंद्रजीव, सूर्यजीव, देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ अ० १९ । ७० । १

अर्थ ।

हे इंद्र ! तु जीवन शक्तिसे युक्त है । सूर्य ! तू जीवनसे युक्त है। हे देवताओ ! आप जीवनसे युक्त हैं । अतएव मैं जीवित रहूंगा । अर्थात्–मुझे पूर्णायु प्राप्त हो, मै पूर्ण आयुतक जीवित रहूँगा ।

(सोरठा)

तुमहो जीवन–युक्त, इंद्र सूर्य अरु देवगण !
दीर्घायुसे युक्त, आप हमें भी कीजिये ॥

योग मीमांसा ।

श्री० कुवलयानंद जी, कुंजवन, लोणावला (जि. पूना) से " योग मीमांसा " नामक त्रैमासिक पत्र निकाले रहे हैं । योग साधन का शास्त्रीय विचार और प्रचार करनेके उद्देश्यसे यह त्रैमासिक प्रारंभ हुआ है । इसका प्रथम अंक हमारे सन्मुख है । इस एक अंकमें करीब ८० पृष्ठ हैं और योगासनों के १६ सुंदर चित्र हैं, इन सोलह चित्रों मेंसे आठ चित्र इसी मासिक में इसी समालोचनाके साथ दिये हैं, इनको देखनेसे पाठकों को पता लग जायगा कि, चित्रोंकी सुंदरता कितनी उत्तम है ।

अब हम लेखमें " योगमीमांसा " के

लेखोंका परिचय हम पाठकों के साथ कराना चाहते हैं । मुख्य लेख उड्डियान बंध पर है। जो पाठक योगसाधनसे परिचित हैं उत्तमतासे जानते हैं कि योगमें " उड्डियान " का महत्व कितना है । योगके अनेक साधनोंमें साक्षात् अथवा परंपरासे उड्डियान का संबंध आता है।

(१) उड्डियान ।

पेट और आंतोंको पसलियोंके अंदर ऊपर और पीछे की ओर ले जानेसे उड्डियान सिद्ध होता है । इसको करनेके लिये घुटनोंपर हाथ रखके, सिर आगे झुकाकर, श्वास बाहर छोडकर पेटको आंतों के साथ पँसलियों में ले जाना चाहिये । साथ वाले चित्रोंसे इसके करने का विधि ठीक प्रकार ज्ञात हो सकता है ।

श्वास जबतक बाहर रुका रहता है तब तक ही यह उड्डियान हो सकता है । यह बलसे अधिक करना भी नहीं चाहिये, क्यों कि इससे हृदयपर विशेष दबाव पडता है । इस लिये जो हृदय के कम जोर हैं उनको इसका थोडा अभ्यास करना चाहिये, अर्थात् प्रारंभ में दिनमें इसका अभ्यास केवल एक दोवार ही करना चाहिये । अधिक नहीं ।

इसका परिणाम पेटपर तथा आंतों पर बहुत ही अच्छा होता है और इसी लिये पेटके तथा आंतोंके बहुतसे दोष इसके करनेसे दूर हो जाते हैं ।

(२) उड्डियान का दूसरा प्रकार ।

पालथी लगाकर भी उड्डियान किया जाता है, योगकी बस्ति विधिके लिये इसका अभ्यास अपूर्व लाभ कारी है यह यहां स्मरण रखना चाहिये कि, डाक्टरी बस्ती (एनिमा) आंतों को कम जोर बना देता है और योगबस्ति आंतोंको बलवान् बना देता है। इस लिये आरोग्य साधन की दृष्टिसे योगबस्ति अत्यंत उत्तम है । इस योगबस्तिकी सिद्धता के लिये पालथी लगाके उड्डियान करनेकी अत्यंत आवश्यकता है ।

उड्डियान करनेसे आंतोंके नीचेके भागमें निर्वात प्रदेश बनता है, और जहां निर्वात स्थान होता है वहां जल का संचार हो सकता है । यही कारण है कि योग बस्तिके द्वारा यंत्रादिकी सहायता के विनाही आंतोंमें जल प्रविष्ट होता है । इतनाही नहीं, प्रत्युत डाक्टरी यंत्रसे भी जलकी पहुंच जहां नहीं है, वहां तक भी जलप्रवेश योगबस्तिसे हो सकता है ।और यह सब उड्डियानसे सिद्ध होता है । इससे पाठकोंके मनमें उड्डियान का महत्त्व आजायगा ।

(३) शीर्षासनमें उड्डियान ।

शीर्षासन में भी उड्डियान बंध किया जाता है, इस समय पांव सीधे न रखते हुए घुटनोंमें मोड कर ही रखने होते हैं, जैसा कि तस्वीर में बताया है । इस में युक्तिसे तथा मनकी प्रेरणासे आंतों

का निचला गुदाके पास का भाग खुला किया जाता है। थोडे दिनोंके अभ्यासमे यह भाग खुला करना सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार यह आंतोंका भाग खुला करनेसे पेट का दुर्गंध वायु सुगमतासे बाहर निकल जाता है। इस कारण वायुके प्रकोपसे होने वाले कई रोग इसके अभ्यासमे दूर हो जाते हैं। इस ढंगसे उड्डियानका वर्णन "योगमीमांसा" में किया है।

(४) सर्वांगासन।

पहिले पीठकेबल भूमिपर (कंबलपर) लेट जाइये। पश्चात् सब शरीरके पट्ठे ढीले करके शनैः शनैः पांव ऊपर करके हाथ के सहारेसे चित्रमें बतायी रीतिके अनुकूल अपने शरीर की स्थिति कीजिये। प्रारंभ में थोडे समय तक अभ्यास प्रारंभ करके जैसा जैसा अभ्यास होगा वैसा वैसा अभ्यास बढाइये। हाथों का सहारा छोडकर भी यह आसन हो सकता है, परंतु उसके लिये कुछ अभ्यास होना आवश्यक है। इसमें मुख्य बात जो विशेष ध्यानमें करनी चाहिये वह यह है कि, छाति पर ठोडी लगनी चाहिये। आंख का लक्ष्य पांवके अंगूठों पर रखना भी उचित है।

इस आसनका शुभ और आरोग्य वर्धक परिणाम संपूर्ण शरीरपर होता है, विशेषतः रक्त संचार करने वाली धमनियों, मज्जा केंद्रों, और पृष्ठवंशके अस्थियोंपर भी होता है और इसी कारण सब शरीर पर इसका विलक्षण आरोग्य वर्धक और हितकारक परिणाम होता है।

गलेकी ग्रंथी जिसके द्वारा शुद्ध रक्त का संचार होता है उस की निर्मलता इस आसनसे होती है, इसीलिये इस आसनका विशेष महत्व है। वीर्यक्षीणता, अति कामसंबंध तथा अन्यान्य संसर्ग रोगोंके कारण इस ग्रंथीकी शक्ति क्षीण होती है। इस ग्रंथी (Thyroid gland) की निर्मलता के कारण पोषक रक्त प्रवाह कम होनेसे अनेक व्याधि उत्पन्न होते हैं। इन सब का निर्मूलन इस आसनसे होता है। इस लिये जो मनुष्य इस सर्वांगासन का अभ्यास नियम पूर्वक करते हैं उनका शरीर पुष्ट बनता जाता है।

हमेशा हृदयके रक्ताशयसे रक्त ऊपर जाता है अथवा ठीक रीतिसे कहा जाय तो रक्त ऊपर भेजा जाता है। भेजन के लिये परिश्रम पडते हैं और यदि गलेकी ग्रंथी दूषित रही तो रक्त ऊपर जानेमें बडी रुकावट होती है, इस लिये इस ग्रंथीकी निर्मलता तथा कार्यक्षमता रहनेका आरोग्य के साथ कितना संबंध है यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है।

सर्वांगासनसे यह चमत्कार होता है कि, उक्त ग्रंथी शुद्ध होती है और साथ साथ गलेका भाग हृदयसे निम्नस्थानमें

होनेके कारण रुधिर स्वयं ही निम्न भागमें चला जाता है और चाहिये उतना हृदयसे रक्त मिलनेके कारण सिर के तथा गलेके भाग निर्दोष और पुष्ट होते हैं। मस्तिष्क का पोषण होने से सब शरीर की निरोगता होने में सहायता होती है। यही कारण है कि जिससे सर्वांगासनसे सब शरीर पर उत्तम परिणाम होता है।

(५)सर्वांगासनसे चिकित्सा।

रोग जंतुओंसे शरीर पर वारंवार हमले होते हैं। शहरों में रोग जंतुओं की गिनतीही नहीं है, ये रोग जंतु हरएक शरीर पर हमला चढाते हैं, परंतु हरएक आदमी रोगी नहीं होता। कई लोक रोगी होते हैं, कई मरते हैं, कई बचते हैं, परंतु कई बिलकुल बीमार होते ही नहीं। इसके अनेक कारणोंमें एक कारण यही है कि जिनकी पूर्वोक्त ग्रंथि ठीक कार्य करती है वे नीरोग रहते हैं, परंतु जिनकी ग्रंथी क्षीण हुई होती है, वे रोगजंतु ओंका हमला होते ही बीमार हो जाते हैं। क्योंकि रोगोत्पादक विषका प्रतिबंध करनेका रस इसी ग्रंथी से निकलता है। आजकल योरोपके डाक्टरोंने इस ग्रंथीका सत्त्व निकाल कर रखा है और वे कई रोगोंपर, कि जो इसकी क्षीणतासे होते हैं, इसी ग्रंथीके सत्त्वका (Thyroid treatment) प्रयोग करते हैं। योगियों को यही बात कई शताब्दीयों के पूर्व विदित हो गई थी और इस आसनसे उक्त ग्रंथीकी शुद्धता संपादन कर के पूर्ण आरोग्य प्राप्त और रोगचिकित्सा भी वे करते थे। इससे पाठक जान सकते हैं कि, योगचिकित्सा की जो अपूर्व बातें शताब्दियों के पूर्व आर्य योगियोंको विदित थी, उनका पता इस समय भी युरोपके डाक्टरोंको नहीं लगा है। वे ग्रंथियोंका रस निकालने तक ही पहुंचे हैं, परंतु प्राण शक्तिद्वारा ग्रंथिशुद्धीकरण की बात भी उनको इस समय तक बिलकुल विदित नहीं हुई है।

(६) कुष्टरोगकी चिकित्सा।

दूध का ही केवल भोजन लेकर यदि सर्वांगासन प्रतिदिन किया जाय तो कालांतर से कुष्ट रोगी, महारोगी, भी इस भयानक रोगसे मुक्त होता है। योगचिकित्सा में यह अनुभव की बात है। जिस रोगमें हाथ पांवकी अंगुलियां सडजाती हैं, वह रोग कितना भयानक है, यह पाठक जानते ही होंगे। क्यों कि बडे शहरोंमें ये रोगी रहते ही हैं। दुग्धाहार के साथ सर्वांगासन करनेसे इस भयानक रोग की निवृत्ति होती है। जब ऐसे भयानक रोग दूर करने की शक्ति इस सर्वांगासनमें है, तो अन्यान्य क्षुद्र रोग क्यों नहीं दूर हो सकेंगे ?

एक कुष्ट रोगी (leper) था, जिसके हाथ और पांव की अंगुलियां करीब सड चुकी थी और वह अंगुलियों

को हिला भी नहीं सकता था । यह रोगी नर्मदा के किनारे एक योगीके पास रहकर पूर्वोक्त चिकित्सा करता था। एक वर्ष के अभ्यासमे हाथ और पांव की सडावट दूर होगई और वह अपनी अंगुलियां हिला सकने योग्य दुरुस्त भी होगया । परंतु न जाने उसके मनमें क्या बात आगई, वह उस योगी-के आश्रमको छोड कर सरकारी इस्पीताल में दाखल हुआ !! योग चिकित्सा छोडतेही फिर वह रोग एकदम ऐसा बढ गया कि, इस्पीतालमें ही वह कई मासके बाद मर गया।

(६) सर्वांगासन का चमत्कार।

एक नवयुवक सोलह वर्षकी आयुका था। उसका चालचलन बिगडनेसे उस-के अंडकी दोनों गुठलियां बिगड गई और उससे तारुण्य जाता रहा। यह देख कर उसने अपना चालचलन सुधार दिया, परंतु छः मासमेंभी अंडकी सुधार नहीं हुई । पश्चात् वह सर्वांगासन करने लगा, छः मासमें उसके अंड सुधर गये !! यह चमत्कार सर्वांगासन का है।

सर्वांगासनसे गलेकी ग्रंथी सुधरती है, उससे पुट्ठे और मजा केंद्र ठीक होते हैं और उसका परिणाम संपूर्ण शरीर पर होता है। तरुण मनुष्योंको विविध बुरी संगतियों के कारण धातु विकार तथा अण्डदोष हुआ करते हैं। इन दोषों के लिये सर्वांगासन अपूर्व लाभकारी है। परंतु यदि रोगीकी अवस्था बिकट हुई हो तो योगी के सन्मुख ही चिकित्सा होनी आवश्यक है।

(७) सर्वांगासनसे स्त्रियोंका लाभ।

सर्वांगासनसे जैसे पुरुषोंके अंडगोल-क ठीक होते हैं उसी प्रकार स्त्रियां का गर्भाशय भी इसीसे दुरुस्त होता है। दोनों के ठीक होनेका कारण एक जैसा ही है।

(८) प्लीहा और यकृत।

हिम ज्वरादि के कारण प्लीहा बढ जाती है और नाना प्रकार के क्लेश होते हैं। इस प्लीहा को ठीक करनेके लिये यह सर्वांगासन अत्यंत उत्तम है। एक सोलह वर्षका नवयुवक प्लीहाके बढ जानेसे रोगी होगया था। अनेक वैद्यों और डाक्टरों के इलाज करनेपर भी ठीक नहीं हुआ। परंतु छः मास सर्वां-गासन करनेसे उसकी प्लीहा बिलकुल और विना औषध ठीक होगई । और वह बिलकुल तन्दुरुस्त होगया। यकृत् भी इस सर्वांगासनसे बिलकुल ठीक होता है। एक मनुष्य यकृत के बिगा-डसे रोगी हुआ था । नाना प्रकारके औषधिप्रयोग करने पर भी वह आरोग्य प्राप्त न कर सका। परंतु इस सर्वांगास-नके करनेसे उस का सब दोष दूर हो कर वह पूर्ण आरोग्य संपन्न हो गया।

इस प्रकार उत्तम लेख इस त्रैमासिक में आते हैं इसलिये जो अंग्रेजी जानते हैं और योगसाधनसे अपना शारीरिक मानसिक और आत्मिक सुधार करना चाहते हैं वे इस को खरीद लें। क्यों कि इस प्रकार का कोई पुस्तक इस समय छपा नहीं है।

व्रताचरणम् ।

(श्री. कवि-वैदिक धर्मविशारद श्री.सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार)

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ यजु० १-५.

(शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

हे अग्ने! श्रुतिज्ञानदा व्रतपते, संपूज्य संसार में।
लेता हूं व्रत आज एक यह मैं, तेरे दया-द्वारमें ॥
ऐसी दे दृढ शक्ति भक्ति भगवन्, हो सिद्धि आचार में।
मिथ्याभाषणभावकर्म तज दूं, सत्यव्रताधारी मैं॥

विष्णु का परमपद ।

ॐ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ यजु ३४—४४.

अर्थः— (यत्) जो (विष्णोः परमम् पदम्) विष्णु, विश्व व्यापक प्रभुका परमपद है (तद्) उसको (विप्रासः) वेदज्ञ ज्ञानी, (विपन्यवः) योगिजन तथा ईश्वर भक्त (जागृवांसः) तथा कर्मशील मनुष्य ही (सं इन्धते) सुप्रकारेण प्रकाशित करते हैं ।

भावार्थ- इसमंत्रद्वारा मुक्ति प्राप्तिके तीन प्रमुख साधन बतलाये गये हैं: (१) ज्ञान, (२) ईश्वर भक्ति, (३) कर्म, यही तीन ज्ञानकाण्ड, कर्मकांड और उपासनाकांड के नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इन तीनों का समन्वय हुये विना, केवल ज्ञान वा कर्मसे मोक्ष मिलना असम्भव है ।

रोलाछन्दः- मेधावी विद्वान, विप्र जो श्रुति गाते हैं ।
योगी योगनिधान, ब्रह्मलय हो जाते हैं ॥
तज निद्रा अज्ञान, कर्मपरता लाते हैं ।
प्रभु का पन्थ महान्, वही मानव पाते हैं ॥

सरस्वती के उपासकों का दर्शन।

१ **गोपथ ब्राह्मण**—आर्य भाषानुवाद भावार्थ सहित। भाषांतरकार — श्री. पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदीजी लूकर गंज प्रयाग। मू. ७।)

श्री. पं.क्षेमकरणदासजी अथर्ववेद भाष्यकार होनेसे वैदिक सारस्वत के साथ परिचय रखनेवाले विद्वानों में पूजनीय और आर्षविद्या प्रेमियों में सुप्रसिद्ध हैं। इन्होंने अथर्ववेद का भाष्य अत्यंत दुष्कर होने पर भी संपूर्ण किया और गोपथ ब्राह्मण का भी अनुवाद प्रसिद्ध किया है। अर्थात् अथर्ववेद संहिता और अथर्ववेद ब्राह्मण इन दोनों ग्रंथोंका आर्य भाषामें अनुवाद इन्होंने पूर्ण किया है। धन्य हैं इनकी विद्वत्ताकी और विशेषतः इनके परिश्रम की। इनका भाष्य तथा अनुवाद विशेष गवेषणासे और परिशीलनसे किया होता है। आशा है कि आर्ष विद्या के प्रेमी इनके पुस्तक खरीदकर इनके ग्रंथोंका आदर करेंगे। इनके पुस्तकों के लिये हरएक आर्य भाईके घर में स्थान अवश्य मिलना चाहिये।

२ **हिंदु धर्म ममिांसा** —। लेखक-डा. शि. ग. पटवर्धन अमरावती (वैदर्भ) मू. १)

डा. पटवर्धन जैसे विरारमें वैसे महाराष्ट्रमें सुप्रसिद्ध हैं। इनके त्याग वृत्तिके कारण ये "तपस्वी" कहे जाते हैं। और इनके अंदर विलक्षण तपस्विता है इसमें कोई संदेह नहीं। राजकीय कार्य क्षेत्रमें इनका कार्य महाराष्ट्रमें हरएक जानता ही है। आपके विचार बडे गंभीर और भावपूर्ण होते हैं। इस लिये इनके कलमसे यह पुस्तक लिखी गई है यही इसकी विशेषता सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है। इस पुस्तकमें हिंदुधर्मकी व्यापकता, साहित्य और संप्रदाय, वर्णाश्रम धर्म, उपासना, दर्शन, गीता, सिद्धांत विचार, इतने शीर्षकों के अंदर लेख है और प्रत्येक शीर्षक के अंदर मननीय विचारों का संग्रह किया है। पुस्तक प्रश्नोत्तर रूपसे लिखीगई है इसलिये अत्यंत सुबोध हो गई है। श्रुतिस्मृत्यादि सब ग्रंथोंके प्रमाण इसमें हैं इस लिये यह एक ही पुस्तक पढनेसे कई शास्त्रों के सिद्धान्तों का ज्ञान होना संभव है। पुस्तक की योग्यता बडी है परंतु मूल्य अत्यंत अल्प है इससेभी ग्रंथ लेखक की तपस्वी उदारता ही व्यक्त होती है।

३ **बलिवैश्वदेव यज्ञ**— (लेखक. श्री. हरिशरण श्री वास्तव तथा श्री. शिवदयालु जी, मेरठ, मू. ॥=)

इस पुस्तकमें यज्ञका भाव स्पष्ट करनेका यत्न कियाहै। इस प्रयत्नमें लेखक सफल हुए

हैं। इस व्याख्यानमें अनेक उपयोगी बातोंका वर्णन है जिस कारण यह पुस्तक विशेष मननीय बनी हैं। यज्ञ विषय में शंका करने वाले अपनी शंका ओंका उत्तर इस पुस्तक में देख सकते हैं।

४ कुरान -- (अनुवादक -- श्री० पं रामचंद्रशर्मा, तथा श्री. पेमशरण आर्य। प्रकाशक -- प्रेमपुस्तकालय आगा। मू. ॥।)

मूल कुरान और उसका सरल भाषानुवाद का यह प्रथम भाग है। इसी प्रकार संपूर्ण कुराण शरीफ् का अनुवाद प्रसिद्ध करने से केवल हिंदी जानने वाले लोग कुरान को पढ सकते हैं और कुरान का विचार कर सकते हैं।

५ कठोपनिषद का स्वरूप— (ले० श्री. पं. प्रियरत्न विद्यार्थी, आर्ष विद्यासदन काशी, मू. ≈) पं० प्रियरत्न जीके लेखों के साथ पाठक परिचित ही हैं। इनके लेख नवीन विचारों के दर्शक होते हैं। इस में " मौत की कहानी " विशेष गंभीरता के साथ बताई है। पुस्तक अवश्य पढने योग्य है। पं. प्रियरत्न जी " आर्ष " नामक मासिक जन्म शताब्दीके उपलक्ष्य में शुरू करने वाले हैं। आर्ष विद्याके प्रेमी अवश्य ग्राहक बनें।

वेद और पशुयज्ञ—(ले० पं० चौधरी काव्यतीर्थ काशी। मू. ।) एक इसाईने " ऋषियोंके खानपानमें मांस खाता था " इस विषयकी एक पुस्तक लिखी, उसका सप्रमाण उत्तर इस पुस्तकमे ग्रंथकारने दिया है।

७ गुरुशिष्य संवाद। मू. ।)

८ शुद्धिसंगठन। मू. ।)

लेखक पं० गोवर्धनदास अध्यापक, स्कूल, मथुरा। दोनों पुस्तक बोधप्रद और पढने योग्य हैं।

९ नायी वर्ण निर्णय —(ले०-पं० रेवतीप्रसाद शर्मा रोटीगोदाम, कानपुर। मू. ॥≈) इस पुस्तकमें लेखक महोदयने यह सिद्ध करनेका यत्न किया है कि "नायी (नापित) ब्राह्मण है।" लेखक सफल हुए हैं वा नहीं इसकी परीक्षा पाठक अवश्य करें।

१० वेद ईश्वरीय ज्ञान है। (ले. श्री. प. राधाकृष्ण जी मुरादाबाद। मू. ≠) नामसे ही पुस्तक का विषय ज्ञात हो सकता है। पुस्तक वेदोंपर विश्वास दृढ करने के लिये उपयोगी है।

११ वर्णाश्रम धर्म। मू. ≠) ।॥

१२ शुद्धि और संगठन। मू. ≠) ।॥

१३ भोजन तथा छूतछात। मू. ≠)

(लेखक श्री पं. जनमेजय विद्यालंकार, आयुर्वेदशास्त्री वैद्यशिरोमणि, नईसडक, कानपुर) पुस्तक सामायिक उपयोग के है और आजकल प्रचलित विषयोंपर निः संदेह उत्तम प्रकाश डालेंगे।

१४ सनातन वैदिक वर्णव्यवस्था– (श्री. पं. चौधरी, काव्यतीर्थ काशी। मू. ≈) वर्णव्यवस्था विषयका विचार इसपुस्तकमें है और वह प्रमाणोंके साथ किया है।

ईश्वरसंकीर्तन। (आरती)

(श्री. भिषगाचार्य डा॰ ईश्वरदत्त विद्यालंकार)

जय जगदीश ! हरे !
निर्विकार! दुःखनाशक! दुःख सब दूर करो ध्रुव॥

(१)
निराकार ! हे दयामय !, सुखसम्पत्सिन्धो !
करुणाकर ! कर करुणा-हम पर हे बन्धो ! ।

(२)
सर्वेश्वर ! जगपावन !, सारे पाप हरो।
अनुपम ! अन्तर्यामिन् ! - वैदिक भाव भरो ॥

(३)
मेधामय ! जगदीश्वर !, तुम को गुरुमाना।
मेधावी हम सब हों—तज पातक नाना ॥

(४)
तेजोमय ! हो भगवान् ! तेजस्वी कर दो।
मातृभूमि सेवाहित -- भुजबल पौरुष दो ॥

(५)
सर्व व्यापक स्वामी, घट घट रमा हुवा।
"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव"॥

(६)
भजन करें ईश्वर का, प्रातः नित सप्रेम।
"अग्ने नय" सुपथोंमें—"नम उक्तिं विधेम"॥

(७)
परमानन्द पिता हम, मिलकर विनय करें।
ईश्वर ! आनन्दामृत—सुखसे पान करें॥

वेदमें सेनाध्यक्षोंके नाम।

(लेखक–प्राणपुरी)

वेदमें सर्व शब्द यौगिक हैं अथवा योग-रूढी है इस बातको छोडकर आज मैंने वैदिक धर्मके पाठकों के संमुख एक और बात रखनी है वह यह है कि वेदमें सेनानायकों के नाम क्या है और क्या वेदमें किन नामों से कहीं उनका वर्णन है यदि है तो किस रूपमें है।

यह विषय अत्यन्त कठिण है जहां वेदका यथायोग्य प्रचार न होने से वेदके भावों को समझनेमें कठिनाई है वहां युद्ध विद्या का भी भारत वर्ष में प्रचार नहीं है यह सत्य है जो कई लक्ष भारतीय सेनामें काम करते हैं तोभी इनका स्थान सेनाओं में क्या है इसके लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है इतना ही लिखना पर्याप्त है " सेना संचालन में उन का कोई स्थान नहीं है।"

वर्तमान काल के शब्दों में भारतवासी सुभेदार के पदतक पहुंच सकते है और गत-युद्धमें इसमे कुछ वृद्धि होकर वह लैफटीनेंट तथा कप्तान के पद को भी छू सकते हैं किंतु छूने वालों की संख्या नाममात्र है इस लिये मझे इस लेखमें यह दूसरी कठिनाई

है जो न इससे मैं। मुझे कोई सहायता नहीं मिल सकती है तो भी मैं साहस करता हूं जो पाठकों के सामने इस विषय को ले जाऊं, ता कि पाठक वेदका स्वाध्याय करते समय इस विषयका भी ध्यान रखें और यदि किसी को सौभाग्य वश इस विषयका बोध हो अथवा उनके कोई परिचित व्यक्ति इस विषयसे अभिज्ञ हों, तो इस विषय पर अधिक प्रकाश डाल कर मुझे अनुग्रहीत करें मेरा यह लेख इस विषयका शीर्षक मात्र होगा।

वेदकी यह एक शैली है वह एकही शब्दसे भिन्नभिन्न प्रकरणों में भिन्न भिन्न भाव वर्णन करता है और इसीको अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत के नामों से लिखा है और मनुष्य के अंगों से ब्रह्माण्ड का वर्णन करना अथवा इसके विपरीत बाह्य वस्तुओंको लेकर मनुष्यके अवयवों का वर्णन एक स्थानपर नहीं अनेक स्थानों पर आता है। उदाहरणार्थ जहां विराट रूपसे वर्णन है वह इसी प्रकार और पुरुषसूक्त ऋग्वेदमें और अध्याय ३१ यजुर्वेदमें तथा इसी प्रकार दूसरे वेदों में वर्णन है इसके अतिरिक्त अथर्व वेद काड १५ सुक्त १८ में लिखा है —

> यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥ योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ॥ अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो इसकी दक्षिण आंख है वह आदित्य है और सव्य चक्षु चन्द्रमा है और दक्षिण कर्ण अग्नि तथा सव्य कर्ण पवमान है और दिति अदिति शीर्षक कपाल हैं और संवत्सर सिर है। इसी भांति—

> यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
> अग्निं यश्चक्र आस्यम् ।

अ. १०।७।३३

'सूर्य तथा चन्द्रमा चक्षु हैं और अग्नि मुख है' इसी प्रकार और भी प्रमाण उद्धृत किये जा सकते हैं इसी पर सन्तोष करके मैं अपने प्रयोजन की ओर आता हूं। इस समय हम सुनते हैं सेनामें सेनापति भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं। कमांडर-इन चीफ, जनरैल, करनैल, मेजर, कप्तान कमांडर, कप्तान, लैफटीनैन्ट और छावनीयों में इंगर्डी पर भी एक होते ह इनके क्या क्या काम होते यह कोई फाजा ही बतावे और युद्ध में वह किस ढंगसे नियुक्त किये जाते है और कौन कौन विशेष काम इन्हें करने होते हैं मुझे इसका भी पता नहीं परन्तु वेदमें युद्धका वर्णन अनेक स्थानों पर आता है उसमें से पाठकों का ध्यान केवल एकादश काण्डके सूक्त ९ तथा १० की ओर आकर्षण करता हूं। सूक्त नवम की देवता अर्बुद है, और दशम की त्रिषंधि है नवम सूक्त के अंतमें 'इमं संग्रामं संजित्य' पाठ पढा गया है और दशम के दूसरे मंत्र में ही 'अरुणैः केतुभिः सह' पाठ है। युद्धमें इस समय भी लोहित पताका ही होती है यदि कोई युद्ध बन्द

करना चाहे उस समय श्वेत पताका दिखाई जाती है। और दशम सूक्त का १६ मंत्र है।

> वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
> इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् । आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम्॥ अ.११।१०।१६

भावार्थ—' वायु अमित्रों को इष्वग्रों से मारे, इन्द्र इनको पार्श्व भागसे दबाए ताकि वह पुनः आक्रमण(counter attack)न कर सकें, आदित्य इनके अस्त्रोंको विनाश करें और चन्द्रमा मिलकर आने वालों के मार्गको विनाश करें । '

इस मन्त्रमें वायु, इन्द्र, आदित्य और चन्द्रमा युद्ध के नायक हैं और चारों के भिन्न भिन्न काम बताए हैं। पता नहीं इस समय जो सेनापति यह काम करते हैं उन्हें किन नामों से कहते हैं। वेद की परिभाषामें यही शब्द अनेक स्थलों में भिन्न भावोंसे पढे गए हैं। वेद प्रायः भिन्न भिन्न प्रकरणों में इन्हीं शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं और इसी लिये कई सज्जन कह देते हैं कि वैदिक धर्मी खींचातानी करते है यह उन का भ्रम है। वेदमें शब्द ही इस ढंगके हैं जो यौगिक वा योगरूढि से उन अर्थों के वाचक है।

प्रायः इस समय लोगों का विचार है कि युद्धविद्या केवल क्षत्रिय ही जानते थे यह भी ठीक नहीं है इतना तो ठीक है जो सामान्यावस्था में राज्य प्रबंध का काम अथवा सेना का काम यही वर्ण करता था, परंतु दूसरे सर्वथा अनभिज्ञ न थे जैसे इस समय कई देशों में युद्धविद्या प्रत्येक व्यक्ति को सीखनी होती है वैसे वेदमें —

> "विशं विशं युद्धाय संशिशाधि"
> अथ० ४।३१।४

'प्रत्येक को युद्ध के लिये शिक्षा दो' विश शब्दके अर्थ प्रजाके हैं क्यों कि वेदमें ही ' त्वा विशो वृणते राज्याय ' आपको प्रजा राज्य के लिये स्वीकार करती है इस प्रतीक से प्रतीत होता है कि युद्ध के लिये प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा मिलनी चाहिये ताकि किसी विपत्ति के समय में सर्वजन अपने देश वा जाति की रक्षा कर सकें।

वेदमें युद्ध का अनेक स्थानों पर वर्णन है। युद्ध के उपयुक्त पदार्थ दुन्दुभि, पताका, शलाकिका भी वर्णन आता है जैसे मैने पूर्व लिखा इस समय भारतीयों को इस विद्या में जैसे योग्य होना चाहिये वैसे नहीं हैं। यदि कोई स्वाध्यायी इस विषय के परिभाषाओं को संग्रह करके कुछ वर्तमान समय के शब्दों द्वारा समझाने का यत्न करें तो यह विषय भी पाठकों के सामने आजावे जो आर्यजाति इस समय भीरु बन रही है उनके धर्म पुस्तक उन्हें शूरता का नाद सुना रहे हैं यदि वह ध्यान से इस नाद को सुने तो उनमें भी शूरता का संचार होजाय।

इस विषय का विशेष विचार कभी फिर किया जायगा।

(कवि- श्री० पं० मुरारी राम शर्मा विशारद)

॥ हमारा अभीष्ट ॥

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः । यजु० ३६-१२।

॥ हरिगीतिका छंद ॥

" कल्याणकारी, विश्व-वासी,
दिव्य-गुण-धारी प्रभो !
शंकर ! करो कल्याण, ईप्सित-
ध्येय पूरा हो विभो !
हो तृप्ति पूर्णानन्द की
हे सौख्य सागर सर्वदा।
सुख-वृष्टि चारों ओर से
करते रहो हम पर सदा ॥ "

॥ प्राणसंयम ॥

ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ स्वः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तपः । ॐ सत्यम् ।

॥ हरिगीतिका छंद ॥

" भूः प्राण का भी प्राण, सारे
विश्व का आधार है ।
दुख-पाप-मल- हारी भुवः ,
स्वः सौख्य का भाण्डार है ।
महनीय, पूज्य, महः, जनः
जिसने रचा सं-सार है ।
तप पूर्ण, तेजस्वी, तपः
सत एकरस अविकार है ॥"

॥ संसार-निर्माण ॥

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥ ऋ० १० । १९० ।

॥ रोला छन्द ॥

"सत्य-नियम-आधार वेद जिसने प्रगटाये ।
शतरूपा, अक्षरा प्रकृति से लोक बनाये ॥
प्रलय-रात्रि, जल-पूर्ण सिंधु का जो निर्माता ।
"वही तपोमय, शक्ति, मान, सबका है धाता १ ॥

"संवत्सर, दिन-रात, समय-संख्या का स्रष्टा।
जो स्वभावतः विश्व-दर्शी, क्रम-द्रष्टा ॥ २ ॥
सूर्य, चन्द्र, नभ, अन्तरिक्ष, भू, स्वर्ग समीहित।
पूर्वकल्पवत रचे उसी प्रभुने सबके हित ३ ॥

॥ परमपिता की प्रार्थना ॥

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ऋ० १।९९।१

अर्थः-हे (जातवेदसे) वेद-विद्या के प्रोत्पादक प्रभो ! (सोमम्) हम सब सोम- शान्त्यादि गुणों को अपने अन्दर (सुनवाम) उत्पन्न करें। (अरातीयतः) हमारे शत्रु-कामक्रोधादि षड्रिपुओं की (वेदः) शक्ति (निदहाति) नष्ट होजावे। (स नः) वह आप हमारी सब (विश्वा-दुर्गाणि) विघ्न बाधाओं को, कठिनाइयों को (पर्षदति) नष्ट कीजिये। हे (अग्निः) प्रकाश स्वरूप प्रभो ! (दुरित सिंधु) दुश्चरित्रता-पाप-रूपी सागर से पार करने के लिये आपही हमारे लिये (नावेव) नाव के समान हो ।

॥ हरिगीतिका छंद ॥

"हे जातवेदस ! सर्वदा हम
सोम का प्रसवन करें ।
हो शान्त ' अनुकम्पा विचारी
ध्यान सब विकसित करें ॥
कामादि रिपु - कुल नाश कर
सब विघ्न बाधायें हरें ।
वा आप रूपी नाव भगवन् !
पापसागर को तरें ॥ "

॥ जीवनोद्देश ॥

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।
यजु. ३५।१४।

" हमें जाना वहाँ है, है
जहां पर ज्योति उजियाली ।
प्रभाके पुंज सविता से
जहां फैली छबिित काली ।
हमारा देव, देवाधार,
देवाराध्य सुखशांति ।
जहाँ पर, आत्म आभासे
मिटाता है निशा काली ॥
प्रकृति से पार होकर अद्-
भुत निज देव को देखें ।
जहाँ है ज्योति उत्तम हम
वहीं परमेश को पेखें ॥ "

॥ प्रभुकी पहिचान ॥

ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् । यजु. ३३ ।३१।

" वेद—विज्ञान का ज्ञाता,
वही सविता पिता प्यारा ।
विश्वरथ का रथी, स्वामी,

सकल जग का सृजन हारा ॥
उसी देवेश का, सबको
दिखाने के लिए, उनमें
बसावें—सृष्टि, श्रुति, विद्वान,
देवे ज्ञान मन मन में ॥ ”

॥ व्यापक आत्मा ॥

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षु-र्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ यजु. ७ । ४२ ।

“अद्भुत-देव-ज्वाला, अग्नि-
विधु-रवि का प्रकाशक है ।
हृदय–अविवेक–तम का ज्योति
के सम जो विनाशक है।
पृथिवि, नभ, स्वर्ग में सर्वत्र
ही वह ईश व्यापक है ।
अचर –चर-विश्व का आत्मा,
प्रभा-परिपूर्ण पालक है ॥ ”

॥ अभय याचना ॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शत-मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् । यजु. ३६ । २४ ।

“ सकल संसार के द्रष्टा,
तुम्हीं हो देवहितकारी ।
उपस्थित सृष्टि के भी पूर्व
से प्रभु ! शुद्ध संचारी ।
विभो ! दो बुद्धि-बल, शतवर्ष
तक जीवें, सुनें, बोलें ।
अधिक सौ वर्ष से भी हम रहें,
भय-हीन हो डोलें ॥ ”

॥ बुद्धिकी प्रार्थना ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु. ३६-३ ।

“ प्रभो प्राणेश ! भवहारी !
तुम्ही आनन्द-सागर हो ।
प्रकाशक देव, सविता, विश्व-
नाटक नाटचनागर हो ।
तुम्हारे श्रेष्ठ व्यापक तेज
का हो ध्यान नित हमको ।
करो प्रभु ! प्रेरणा ऐसी
बना दो बुद्धियुत हमको ॥ ”

॥ प्रभु को नमस्कार ॥

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ यजु. १६।४१

नमस्ते शंभु सुख-दाता,
नमस्ते शान्ति के कर्ता ।
नमस्ते नाथ ! धन-धाता,
नमस्ते दैन्य-दुख हर्ता ।
प्रभो ! कल्याणमय ! तुमको
नमः निसदिन हमारा हो ।
तुम्हारे दिव्य चरणों में
नमः शिरसा हमारा हो ॥ ”

वैदिक सभ्यताके पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द ।

(लेखक—श्री. पं. धर्मदेव सिद्धान्तालंकार)

ऋषि दयानन्दके जीवनपर हम जिस भी दृष्टि से विचार करें हमें उसके अन्दर स्पष्ट तौर पर बडी महत्त्व पूर्ण विशेषताएं प्रतीत होती है। सत्यवादिता, निर्भयता, निष्कपटता, सरल हृदयता, अभिमानशून्यता इत्यादि सद्गुण आदित्य ब्रह्मचारी, भारत माता के मुख को उज्वल करने वाले, वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक, आचार्य ऋषि दयानन्द के जीवन का एक आदर्श अनुकरणीय निष्कलंक जीवन बना रहे थे। देशभक्ति का भाव ऋषि की नस नस में कूट कूट कर भरा हुआ था, पर उस के साथ ही—'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का भी उस आदर्श संन्यासी ने ज्वलन्त उदाहरण रखा था। वस्तुतः उसका जीवन इतना उच्च था कि बडे बडे कट्टर विरोधियोंको भी उसका महत्व स्वीकार करना ही पडता है। इस छोटेसे लेखमें ऋषि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन और कार्यपर प्रकाश डालना सर्वथा असम्भव है केवल वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धारके रूप में ऋषि ने क्या कार्य किया और वह वैदिक सभ्यता क्या है इस विषय का दिग्दर्शन यहां कराया जाता है।

मेरे विचार में यदि कोई सबसे बडी बात ऋषि दयानन्दको गत शताब्दीके अन्यसमाज-सुधारकों से भिन्न करती है तो वह यही है कि वे वैदिक सभ्यता के पूर्ण मर्मज्ञ थे और इसी के पुनरुद्धारार्थ इनकी सब चेष्टाएं थीं। श्रीयुत राजाराम मोहनराय, बा. केशवचन्द्र

सेन, पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, नवीनचन्द्रराय इत्यादि अनेक समाज सुधारकों ने अपनी अपनी योग्यता और शक्तिके अनुसार गलतसी में भारतीय समाजमें प्रचलित बुराइयों को दूर करने का यत्न किया, पर बिना किसी पक्षपातके इस बातको कहा जा सकता है कि उनमें से कोईभी वैदिक धर्म और सभ्यता का मर्मज्ञ नहीं था और उन्होंने बहुत अंशों में पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता से ही विचार ग्रहण किये थे। यही कारण है कि वे थोडे बहुत सुधार करने में समर्थ हुए किन्तु जनता के अन्दर धर्म देश तथा जात्यनुराग पैदा करनेमें वे बहुत ही कम सफल हुए। ऋषि दयानन्द पाश्चात्य विचार पद्धति तथा सभ्यता से बिल्कुल भी प्रभावित न थे। उन के लिये वेद ही सर्वस्व और प्राणों से भी बढकर प्रिय थे, अतः उन्होंने जिन भावों का प्रचार किया वे विशुद्ध वैदिक भाव थे इसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता। वैदिक सभ्यता का ऋषि दयानन्दने किस प्रकार पुनरुद्धार किया यह जानने से पहिले हमें वैदिक सभ्यता के तत्त्व स्पष्ट करने वाले निम्नलिखित सूत्रों को भली भान्ति समझ लेनी चाहिये।

(१) 'सत्येनोत्तभिता भूमिः' अर्थात् भूमि का धारण सत्य पर ही निर्भर है। ऋ. १०।८५।१

(२) 'सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्' अर्थात् सत्य यश और ऐश्वर्य तीनों उपादेय हैं जिनकी प्राप्ति के लिये प्रत्येक आर्य को यत्न करना चाहिये पर उनमें से सत्य ही सबसे प्रधान है अतः आवश्यक हो तो उसके संरक्षण के लिये शेष दो का त्याग करने को उद्यत रहना चाहिये।

(३) 'सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ॥ अथर्व १२।१।१

अर्थात् सत्य, विस्तृत ज्ञान, क्षात्र बल, ब्रह्मचर्यादिव्रत, धर्ममार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंको सहनशीलतासे सहन, धन धान्य इत्यादि तथा यज्ञ—देवपूजा संगतिकरण (एकता) दान अथवा स्वार्थत्याग इन सब गुणों और शुभ भावों से ही मातृभूमिका यथार्थ धारण हो सकता है अन्यथा नहीं।

(४) 'स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्' ऋ. अर्थात् प्रकृति और प्रयत्न करनेवाला आत्मा इन दोनों ही की तरफ ध्यान देना चाहिये — प्राकृतिक आत्मिक दोनों उन्नतिके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये पर इन दोनों में से स्वधा या प्रकृति का स्थान नीचे है और आत्मा का स्थान ऊपर है अतः प्राकृतिक उन्नति करते हुए आत्मिक उन्नति का उससे अधिक ख्याल रखना चाहिये कहीं ऐसा न हो कि प्रकृति सागर के अन्दर हम अपने को ऐसा डुबो डालें कि फिर निकलनेकी आशा ही न रहे।

(५) पुरुषो वाव यज्ञः। छा. उपनि० अर्थात् पुरुष का सारा जीवन यज्ञमय होना चाहिये। निष्काम सेवाके आदर्श को रखते हुए प्रत्येक व्यक्तिको यथाशक्ति स्वार्थत्याग पूर्वक पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिये।

(६) तेन त्यक्तेन मुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। य० ४०। २ अर्थात् जगत् के पदार्थों का उचित उपभोग अवश्य करो किन्तु यह सब कुछ परमेश्वरका है जो उस की कृपासे हमें प्राप्त हो रहा है यह जान कर लोभ के अन्दर न फँसो।

वैदिक सभ्यता के यथार्थ तत्वको समझने के लिये ऊपर जिन सूत्रों का उल्लेख किया गया है उनपर मनन करना अत्यावश्यक है। ऋषि दयानन्द के सारे जीवन का रहस्य इन तत्वों को समझने पर खुल जाता है। बाल्य तथा यौवन काल में भोगविलास में भोगविलासमय सामग्री पर लात मारते हुए जो मूलशङ्कर पहाड़ों और जगलोंमे योगी महात्माओं की तलाशमें भटकते रहे वे केवल सत्य के ज्ञानके लिये, जिसके विना वेद भगवान् बताते हैं भूमिका धारणतक असम्भव है। स्वयं सत्य ज्ञान प्राप्त करके ऋषि दयानन्दने अपने जीवन को यज्ञरूप बना दिया दिन रात सोती हुई आर्य जाति को जगा कर उसके अन्दर धर्मदेशानुराग पैदा करने में उन्होंने लगा दिये। दीक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्यादि व्रत और तप के विना मातृभूमिका संरक्षण असंभव है इस वैदिक तत्वको ध्यानमें रखते हुए ऋषिने प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को आकर्षित किया जिसकी जड़में दीक्षा और तप काम करते थे। ऋषि दयानन्दने उस पाश्चात्य सभ्यता के विरुद्ध जिसके चका चौंधसे प्रभावित होकर उस समयके बहुत से प्रसिद्ध समाज सुधारक समझ रहे थे कि इसी का अवलम्बन से देशका कल्याण होगा जोरदार आवाज उठाई क्यों कि केवल प्राकृतिक सभ्यता जिसमें आत्मा और परमात्मा के लिये कोई स्थान नहीं और जो नास्तिक होने में अपना गौरव समझती है जगत का सत्यानाश कर सकती है न कि वास्तविक कल्याण। उन्होंने जिस वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार के लिये प्राणार्पण से प्रयत्न किया उस में प्राकृतिक उन्नति को भी उचित स्थान दिया गया है यद्यपि उसे आत्मिक उन्नति को दबानेका अवसर नहीं दिया गया। इस सारे को एक ही वाक्य में यों कहा जा सकता है कि ऋषि दयानन्दने भारतीय जनताको ही नहीं बल्कि जगत् मात्रको फिरसे वेदों के मार्ग पर चलनेका आदेश किया। वैदिक सभ्यता के प्रचार से ही जगत् का कल्याण हो सकता है यह ऋषि दयानन्द का मुख्य सन्देश है। क्या हम ऋषि के अनुयायियों ने वैदिक सभ्यता के तत्वों को भली प्रकार समझ लिया है ! क्या हमने उन्हे अपने जीवनों में पूर्ण रूप से ढाल दिया है। यदि नहीं तो दूसरों को हम किस मुख से उपदेश कर सकते हैं ! ऋषि जन्म शताब्दि समारोह के पुण्यावसरसे लाभ उठाकर हम में से प्रत्येक आर्य को वैदिक सभ्यता के उपर्युक्त तत्वों को जीवन के अन्दर पूर्णरूप से परिणत करते हुए उनके यथाशक्ति प्रचारार्थ उद्युक्त हो जाना चाहिये केवल शोर मचाने से कुछ न बनेगा।

दयानन्द शताब्दिके उपलक्षमें पं. अभय द्वारा संगृहीत
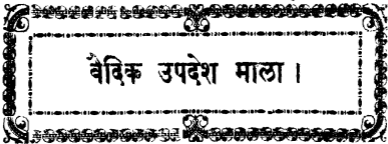
वैदिक उपदेश माला ।

(११)
अहिंसा

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥
ऋ. १।५०।१३

यह वेद मंत्र ऋग्वेद के प्रथम मंडल के ५० वें सूक्त का अन्तिम मंत्र है । इसका अर्थ यह है । यह आदित्य परिपूर्ण बल के साथ उदय हुवा है। क्या कर्ता हुवा ? मेरे लिये द्वेषी शत्रु का नाश करता हुवा । इसलिये मैं द्वेष करने वाले का कभी नाश मत करू । इस मंत्र का आन्तिम पद तो सब उन्नति चाहने वाले आर्य पुरुषोंको कण्ठाग्र याद कर लेना चाहिये । मो अहं द्विषते रधम् । (अहं) मैं (द्विषते) द्वेष करने वाले का (मा उ) कभी मत (रधम्)नाश करूं । परन्तु मनुष्यके चित्त में शंका पैदा होती है, कि मैं द्वेषी का क्यों नाश न करूं? जब वह मुझ से द्वेष करता है, मुझे कष्ट देता है तो मैं उसे कष्ट क्यों न दूं ? । इसी बातका उत्तर पहिले तीन पादों में दिया है ।

मैं इसलिये नाश न करूं क्योंकि संसार में एक आदित्य उदय हुवा हुवा है। पूर्णबल के साथ उदय हुवा हुवा है और वह द्वेष करने वाले का नाश कर रहा है । यह बतलाने की तो जरूरत नहीं कि इस प्रकरण में वह आदित्य परमात्मा है और उसका पूर्ण बल (विश्वसदः) उसकी सर्व शक्तिमत्ता है । वह हिंसा करने वाले का नाश करता है । यह उसका स्वाभाविक गुण है तो मैं क्यों व्यर्थ में द्वेषी के नाश करने में लगूं ? क्यों कि यदि उस द्वेष करने वाले का नाश होना चाहिये तो वह होरहा है, मैं उस का दण्ड विधाता बनने के लायक नहीं हूं । परन्तु बदला लेना प्रति हिंसा करना, केवल इस कारण अनुचित नहीं है, इतना भारी पाप नहीं है । वह तो अपना नाश करने वाला है इस लिये घोर पाप है । नाश कारकता साफ है क्यों कि वह सर्व शक्ति

मान् उदित हुवा आदित्य द्वेष करनेवाले का नाश करता है। "द्विषन्तं रन्धयन्" वह सदा है। हम द्वेष करेंगे — चाहे हम बदले में करें या स्वयं शुरू करें — वह अपने स्वाभाविक गुण के अनुसार नाश करेगा। यह समझना कि यदि मैं द्वेष करूंगा तो मेरा नाश नहीं होगा बडे अंधेरे में रहना है। अतः हमें प्रति हिंसा इसी लिये नहीं चाहिये क्यों कि इससे हमारा नाश होता है। परन्तु हमने यह बात नहीं समझी है इस लिये हमें जो कोई गाली देता है हम और बढ कर गाली देते हैं जो हमें दुःख देता है हम दांत पीस कर उसे और दुःख देना चाहते हैं। जो हमारी कुछ हानी करता है हम उसे जानसे मार डालने का यत्न करते हैं। किसी पूर्ण न्याय कारी को अपने ऊपर न देख कर व्यक्ति व्यक्ति का बदला ले रहा है, ईश्वर के पुत्रोंका एक समुदाय दूसरे समुदाय से लड रहा है, और फिर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का नाश करना चाह रहा है। कभी भारत में हिन्दु और मुसलमान आपस में प्रति हिंसा कर रहे हैं और कभी बडे बडे राष्ट्र प्रति हिंसा की इच्छा से इस वसुंधरा को शत्रु रुधिर से प्लावित करने की तय्यारी कर रहे हैं। यह सब दुनियामें क्यों हो रहा है, इस लिये कि हमें इस वेद वचन पर विश्वास नहीं। यह विश्वास नहीं कि दुनिया पर कोई सर्व शक्तिशालिनी सत्ता राज्य कर रही है और वह द्वेष करने वाले का सदा नाश कर रही है। इस लिये हम स्वयं ही द्वेषी को दण्ड देने के बहाने से प्रति हिंसा में लग जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि हम ही इस कार्य द्वारा उस सच्चे शासक के दण्डनीय बन रहे हैं और अपना नाश कर रहे हैं। सच तो यह है कि इस विश्वास के बिना अहिंसक बनना असंभव है। जिसे परमात्मा के न्याय पर विश्वास नहीं वह कभी 'अहिंसा' धर्म का पालन नहीं कर सकता। इस हिंसा बहुल संसार में जो कुछ 'अहिंसा' के उज्वल पवित्र दृश्य दिखायी देते हैं उनके मूल में यही सत्य विश्वास होता है। संसार ग्रस्त लोग कहते हैं ऐसे कष्ट सहन मे कुछ लाभ नहीं है, परन्तु जो उस आदित्य को उदय हुवा देख रहे हैं वे इनकी बात को कैसे मानलें। उन्हें तो दीखता है कि जो मनुष्य प्रति हिंसा नहीं करता — हिंसा को सह जाता है वह अपने को परमात्मा की छाया में लेजाता है- उस सर्व शक्तिमान की सर्व रक्षक शरण में हो जाता है और जो बदले म तलवार चलाता है वह केवल उस तुच्छ तलवार की शरण में जाता है और उस परमात्मा का अपराधी भी साथ साथ बनता है। उन्हें तो इतना भारी भेद दिखाई देता है इसलिये वे 'शत्रु के प्रहार को सहना' ही अपने लिये अति कल्याण कर समझते हैं।

इसी लिये संसारके उस वर्तमान महा पुरुष ने जो कि जगत् में अहिंसा धर्म की स्थापना के लिये आया है अथवा संसार की

बढी हुई हिंसा ने जिसे बुलाया है उस गांधीने सन १९२३ में चाहा था कि यदि बारडोलीके भारत वासी निहत्थे खडे हों और उनके चित्तमें अंग्रेजों के प्रति द्वेषका लेश तक न हो बल्कि वे हृदय में उनकी मंगल कामना कर रहे हों और उनपर अंग्रेजी सरकार की गोलियां बरस कर उनके सिर ऐसे फोडती जांय जैसे कि फटा फट कच्चे घडे फूटते जाते हों तो वह दृश्य भारत के लिये-- बल्कि जगत् के लिये—परम परम सौभाग्य का होगा। ऐसा दृश्य चाहने का बल उसी में आसकता है जो कि जगत् में सर्व शक्तिमान् आदित्य को काम करता हुवा साक्षात् देख रहा है। सचमुच ऐसा द्रष्टा बैठे से तोप बन्दूकों की सहायता के प्रलोभन को छोड कर सर्व शक्तिमान की ही अक्षय सहायता को चाहता है। भगत प्रल्हाद को इतने दुःख सहने का साहस था — लगातार अहिंसक रहने का साहस था-तो इसी कल्याण कारी विश्वास के बल पर था। ऋषि दयानन्द को जब जगन्नाथ ने जहर खिलाया, तो उन्हें उसपर करुणा उत्पन्न हुई, अंदर से दया का स्रोत बह निकला उन्होंने उसे कहा कि खैर जो कुछ तूने किया अब तू यहां से चला जा नहीं तो मेरे भक्त तुझे तंग करेंगे। भाग जाने के लिये उसे अपने पास से रुपये दिये। जहर खाकर उन्हें चिन्ता यह हुई कि जिसने उन्हें मारा है उस की रक्षा कैसे हो, इसमें अपने मरने को भी भुला दिया। उस वेद वचन को समझने वाला ही ऐसा कर सकता है यह एक कदम और आगे है। कि जो हमारी हिंसा करे, हम उसकी हिंसा न करें यही नहीं किन्तु उसकी भलाई करें। यह ऋषि दयानन्द का उपदेश है। क्रोधके स्थान पर करुणा, मारने वाले पर भी दया। सारे जीवन भर जो उन्होंने गालियां सुनीं, पत्थर ईटें खायीं, और न जाने क्या कष्ट सहे यह सब बातें हमें और क्या उपदेश देती हैं। तो क्या दयानन्द के शिष्य 'हिंसक' होने चाहिये, दूसरे का बदला लेने वाले होने चाहिये। दयानन्द का स्मरण कर हमें अपने हृदयों को इतना विशाल बनाना चाहिये कि हम अपने दुःख देने वाले पर दया के अतिरिक्त और कुछ कर ही न सकें। अवश्य ही यह जानकर कि मेरी हिंसा करने वाला अज्ञानी परमात्मा के अटल नियमों का शिकार होगा, उस विचार पर दया ही आनी चाहिये, कि स्वयं क्रोध कर दण्ड के भागी बनना चाहिये। इस लिये इस मास हमें यही वेद का उपदेश है कि—

' हिंसा मत करो '

अपनी हिंसा करने वाले को परमात्मा पर छोड दो हम तो अल्पज्ञ हैं। बहुत बार अपनी भलाई को भी हम तो हिंसा समझ लेते हैं और यदि ऐसे समय भी बदला लेने लगते हैं तो कितनी घोर मूर्खता में पडे होते हैं। वह सर्वज्ञ परमात्मा ही सब को ठीक जानता और सब को सदा ठीक दण्ड देता है। यह उसी का काम है। हमें तो अपने

हिंसक को परमात्मा पर छोड अपनी रक्षा के लिये भी परमात्मा ही की शरण पानी चाहिये। पर आप शायद कहेंगे कि हमें तो विश्वास नहीं होता कि परमात्मा पाप का दण्ड देता है, दयानन्द जैसे महात्माओंको यह विश्वास था अतः वे अहिसा कर सकते थे'। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि विश्वास यूंही किसी को नहीं हो जाता। महात्माओं को भी कर्म करने से ही धीरे धीरे विश्वास पैदा हुवा होता है। आप भी अहिंसा का पालन शुरू कीजिये जो आपकी हिंसा करे उसका जवाब मत दीजिये, कुछ समय में यदि यह सत्य है तो इस पर अवश्य विश्वास हो जायगा। मैं तो कहता हूं कि 'मो अहं द्विषते रधम्' यह वेद की आज्ञा है, इसे स्वतः प्रमाण मान कर अहिंसा का व्रत लीजिये तो थोडासा अहिंसा पर आचरण करने से आपमें इसके लिये थोडी सी श्रद्धा अवश्य उत्पन्न होगी, उस श्रद्धा से आप और अधिक अधिक अहिंसक बनेंगे और तब और अधिक अधिक श्रद्धा बढेगी। असल में परमात्माकी दृष्टिकी तरफ चलते हुवे हमें दिनों दिन अहिंसक ही होना होगा क्यों कि और सब गुणोंकी तरह अहिंसा की भी भगवान् पराकाष्ठा हैं। और धर्मोंमें अहिंसा तो परम धर्म हैं। योग शास्त्र में यम नियमों पर व्याख्या करते हुवे व्यास भगवानने कहा है कि अहिंसा इन सबका मूल है, अन्य सब धर्म तो अहिंसा को पुष्ट करने के लिये ही बताये जाते हैं असल में एक धर्म अहिंसा हैं इसकी सचाई अहिंसा के पालन करने वाले को ही पता लग सकती है। आशा है हम इस परम धर्म को आजसे अपने जीवन में लाने का सतत यत्न करते हुवे अपने जीवन को कृत कृत्य बनावेंगे।

विश्व प्रेम।

१२

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। य० ३६।१८

'हे अज्ञानान्धकार के निवारक देव! मुझे सब भूत मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सब भूतों को मित्र की दृष्टि से देखूं। एवं

हम सब परस्पर मि। दृष्टि से देखा करें इस प्रकार हमें आ। दृढ कीजिये । '

इस मंत्र में जिस धर्मका प्रतिपादन किया गया है यदि हम उस कल्पमें इसे अपने जीवन में चरितार्थ करेंगे तो हम निःसन्देह कृत कृ। हो जांयगे । पिछली बार अहिंसाधर्म का उल्लेख हुआ है। 'अहिंसा' शब्द जिस बातका निषेधात्मक रूपमें वर्णन करता है उसी का भावात्मक रूप विश्वप्रेम है। यदि हम स। भूतों को, सब प्राणियों को मित्र दृष्टिसे देखने लगें तो हमारे और बहुत से पाप भी स्वयमेव दूर हो जांय। क्यों कि तब हम ऐसे ही सब कर्म करेंगे जो कि एक मित्र के साथ करने चाहिये। मित्र अपना होता है और उस के साथ आत्मदृष्टिसे भी अधिक प्रेमदृष्टि से व्यवहार किया जाता है। इस लिये तब हम सुवरणीय नियम के अनुसार दूसरे से वैसा ही बर्ताव करेंगे जसा कि हम अपने लिये बर्ताव चा। ते हैं इस प्रकार तब हम किसी को भी (सभी हमारे मित्र हैं) कष्ट नहीं पहुंचायेंगे, क्यों कि हम स्वयं कष्ट नहीं पाना चाहते- किसी को धोखा नहीं देवें क्यों कि हम धोखा खाना नहीं चाहते, किसी का माल नहीं चुरावेंगे क्यों कि अपना माल चोरी होना नहीं चाहते। इसी प्रकार मित्र दृष्टि प्राप्त कर लेने पर अन्य सब धर्म के अंग भी अपने आप पाले जांयगें। यही इस धर्मका माहात्म्य है। अब जरा अपनी कल्पनामें एक छोटे समुदाय को ही चित्रित कीजिये जहां कि सब परस्पर मित्र-दृष्टिसे देखते हों, मतभेद रखते हुवेभी प्रेम करते हों, परोपकारमें रत हो, परस्पर दूसरे के अधिकारों की चिन्ता रखते हों, तो आपके सामने सच्चे स्वर्ग का दृश्य आजायगा। क्या आप इस स्वर्गको नहीं लाना चाहते? शायद आपका विचार एक दम बाहर जायगा और आप कहेंगे कि हम तो इस स्वर्ग को लाना चाहते हैं किन्तु अन्य लोग इसे नहीं लाने देते। यह शिकायत तभी तक है जब तक कि स्वयं इसके लिये यत्न नहीं कि-या जाता। एक ही जगत् एक आदमी के लिये स्वर्ग और दूसरे के लिये नरक हो सकता है। यह अपने हाथमें है। इसी लिये इस वेद मंत्रमें चाहागया है कि सब मुझे मित्रदृष्टिसे देखें और फिर उसका उपाय बताया गया है कि मैं सब को मित्र दृष्टि से देखूं। सब स्वयं मित्रदृष्टिसे देखना शुरू कीजिये, सब आपके मित्र हो जांयगे। और आपको स्वर्ग मिल जायगा। पतंजलि मुनि तो कहते हैं तब आपके चारों ओर के प्राणी भी आपस में वैर नहीं कर सकेंगे। क्या उन्होंने यह यूं ही कह दिया है। नहीं हम अपने प्रेमसे सचमुच संसार को नया बना सकते हैं। यही योग है, यही परमात्मा की प्राप्ति है। सब जगत् में अपने प्रेम को फैला देना ही परमात्मप्राप्ति है। क्यों कि परमात्मा का सब जगत में- जगत के क्षुद्रसे क्षुद्र प्राणीमें - पुत्रवत् प्रेम है वात्सल्य है, वे सब के पिता हैं।

यदि हम सब को अपना भाई समझें,प्राणिमात्र में मित्र दृष्टि रखें, तो हम परमात्मा के अपने आपको अनुकूल करते हैं, परमात्मा के पितृस्वरूप को साक्षात देखते हैं। एवं भक्त पुरुष हरएक वस्तु में परमात्मा को ही देखते हैं और हरएक वस्तु से प्रेम करते हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि सब प्राणियों में प्रेमदृष्टि करना परमात्मा के पास पहुंचना है। सब महापुरुष इसी प्रकार पहुंच चुके हैं। ऋषिदयानन्द ने अपना प्रेम सब जगत में फैला दियाथा। वे प्राणिमात्र के बन्धु थे। वह इसी लिये। यदि आप भी कहीं पहुंचना चाहते है तो 'विश्व प्रेम' को अपना आदर्श बनाइये।

प्रेम का सूर्य हरएक जीव के अन्दर छिपा हुआ है। वह कभी अपने सहस्रों किरणों में जगमगा उठ सकता ह। परन्तु उसके मार्ग में एक बाधा है, रुकावट है। यदि यह रुकावट दूर हो जाय तो फिर किरणों के फैलने में क्या देर लगती है। वह है स्वार्थ खुदगर्जी जो कि हमारे मार्ग में एक मात्र बाधा है। इसे ही अस्मिता, अहंकार, अविद्या आदि में वर्णन किया जाता है। यही वृत्र है जिसने इस सूर्य को ढाप रखा है। इसी पर जय प्राप्त करने के लिये वेदों में इतनी युद्ध वर्णनायें है। हमें यह समझ लेना चाहिये कि 'स्वार्थ ही हमारा एकमात्र शत्रु है'। जितना जितना हम स्वार्थ के आवरण को हटायंगे उतना उतना ही हमारा प्रेम का सूर्य फैलता जायगा। हम अपने स्वार्थ को ही हटाते हुवे अपना स्वार्थ स्थापित कर सकते है — और कोई बाधा इस में नहीं है। इस लिये आइये अब देखें कि हम स्वार्थ ग्रस्त पुरुष किस क्रमसे बढते हुए अपने प्रेम सूर्य को पूर्ण विकासित कर सकते हैं।

पहिला कदम है अपने परिवार में यह स्वर्ग का राज्य स्थापित करना। माता पिता पत्नी पति भाई बहीन आदि सब परिवार के सभ्य परस्पर स्नेह दृष्टि से देखें, मधुर वाणी बोलें, एक दुसरे की सहायता करते हुए मिल कर रहें। परिवार में सबसे पहिले मनुष्य 'मुझे शारीरिक स्वार्थ में ही मस्त नहीं रहना चाहिये' यह सीखता है। परन्तु परिवार के लिये स्वार्थ त्याग करना कुछ कठीन नहीं है। जो लोग अपने परिवार में ही वह प्रेम का राज्य नहीं ला सकते वे आगे समाज या देश की क्या सेवा कर सकेंगे यह बात अनुभव करनी चाहिये। यदि परिवार में शान्ति नहीं है तो पहिले अपने प्रेममय और स्वार्थत्यागमय व्यवहारसे परिवार को यह पाठ पढाना होगा। यदि शान्ति है तो आप आगे देखें।

अब अपने समाजमें या अपने नगर में आप के सब मित्र होने चाहिये। हर एक मनुष्यके साथ आपका मित्र सदृश स्नेहका बर्ताव होना चाहिये। यदि आप अपने नगर या अपने समाज के लिये अपने स्वार्थ त्यागने के लिये तैय्यार है तो आपके लिये वहां कोई अमित्र नहीं रहेगा। इससे अपने दिलसे पूछिये कि अपने नगरमें या अपने

समाज में मेरी किसीसे शत्रुता तो नहीं है। यदि है उसे त्यागिये और अपने स्वार्थ त्यागसे शत्रुको भी अशत्रु बनाइये। परन्तु मैं यहां आगे चलने से पूर्व एक स्पष्ट प्रश्न पूछ लेना चाहता हूं। कहीं आप पुराने संस्कारों के वश या उनमें बह कर बह तो नहीं भूल गये कि जिन्हें आज कल 'अछूत' कहा जाता है वे भी आपके नगर के और समाज के भाई हैं !! क्या वे भी आपके साथ मित्रवत् एक चटाई पर बैठ सकते हैं ? कुवें पर चढ सकते ? यदि नहीं तो सोचो कि क्यों ? । क्या वे भाई नहीं ? । यदि भंगी का कार्य मलिन है तो क्या यह कार्य हमारी मातायें नहीं करतीं, डाक्टर लोग नहीं करते ? फिर क्या बात है । यदि वे मलिन रहते हैं तो यह तुम्हारे स्वार्थ के कारण है । पुराने ग्रंथों में पाखाना कमाने का पेशा करने वालों का कहीं जिकहीं नहीं है, इस के लिये 'शब्द' ही नहीं है । यदि वे हमारे लिये सफाई का इतना उपयोगी कार्य करते हैं तब तो हमें उनका बडा एहसानमन्द होना चाहिये, उन को दुतकारना किस तर्क से सिद्ध होता है। यदि आप इन बातों को बहुत सुन चुके हैं तो पहिले स्वार्थ को धोकर अपने को पवित्र कीजिये तो तुरन्त आपका प्रेम इन परम उपकारी किन्तु पीडित जीवों तक फैल जायगा । आप पश्चात्ताप कर इन्हें अपनायेंगे । आपके मित्रवत् व्यवहार को देख ये स्वयमेव अपने को स्वच्छता से भी रक्खेंगे । समझ नहीं आता कि जो इनमें से स्वच्छ रहते हैं उन्हें भी स्पर्श करने तक भी झिझक क्यों होती है। क्या उनमें आत्मा नहीं है ? । उनमें आत्मा और परमात्मा का वास यदि उन्हें हमारे छिने छने तक पवित्र नहीं बना देते तो निःसन्देह हम ही अपवित्र हैं । क्या आर्यसमाज में भी ऐसे व्यक्ति हैं जो इन्हें छू नहीं सकते, जिनके बच्चे इनके बच्चों के साथ पढ नहीं सकते, जिनके कुवों परसे ये बिचारे जल नहीं भर सकते । यदि ऐसा है तो इस खाई को बिना भरे आगे नहीं चल सकते । जब तक हम अपने समाज में अपने एक एक भाई को मित्रका स्वाभाविक हक नहीं देदेंगे तब तक हम समाज ही नहीं बना सकते और इसी लिये हमारे दुःख भी नहीं टल सकते । इस प्रश्न को विना हल किये हमारे लिये कुछ और चारा नहीं है । यदि हम अपने क्षुद्र स्वार्थों की बाल देनेसे न डरें तो आर्य समाज एक झटके में अस्पृश्यताको दूर कर सकती है । क्या यह दयानन्द स्मरण का शुभ अवसर यूं ही देखते देखते बीत जायगा और हमसे इतना भी न करा सकेगा । यदि हर एक आर्य आज से इन्हें मित्र की तरह स्पृश्य बना ले तो ही अच्छा है । तब कहा जा सकता है कि उसने दयानन्द जन्म शताब्दि कुछ मनाई है और वेद का उपदेश सुना है । अस्तु । एवं समाज के एक एक व्यक्ति में हमारा मित्र भावका प्रेम फैल जाना चाहिये ।

आगे हमारा कुटुंब देश बनता है । इस कुटुम्ब का अनुभव पाठक देशभक्ति के प्रकरण

में कर चुके हैं। मातृभूमि के सब पुत्र हमारे भाई हैं। सब हिन्दु, सब मुसलमान, सब ईसाई, सब सिक्ख हमारे भाई हैं। प्रायः हम लोगों का प्रेमविस्तार अभी अपनी छोटी कौमों और फिरकों से ऊपर नहीं उठा है इस लिये इस कदम के बढानेमें हमें विशेष यत्न की जरूरत है। हमारा प्रेम सम्पूर्ण देशमें फैल जांय और देशके लिये अपने सब स्वार्थों को बलिदान करदें। मातृभूमि की सेवा करने के लिये बेशक हमें बहुत अधिक स्वार्थहीन होना पडेगा, परन्तु इस स्वार्थ हीनता वा प्रेम विस्तार से ही हमें सुख मिलेगा, क्यों कि ऐसा करने से हम परमात्मा के अधिक नजदीक पहुंचेंगे। देशके सब बासिंदों के सुख में हम अपना सुख समझें, उन के दुःखसे हम दुःखित होजांय। देश भाइयों की ऐश्वर्य वृद्धि में हम अपने को धनी समझे और उनकी निर्धनता में अपनी निर्धनता। सारे देश में अपना प्रेम फैलाने का यही अर्थ है। और इस प्रेम विस्तार द्वारा हम अपने देशमें स्वर्ग ला सकते है यह कोई कठिन काम नहीं है, क्यों कि संसार के बहुतसे देश अपने इस देश प्रेमके बलसे सुख भोग रहे हमारे सामने विद्यमान हैं। परन्तु इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व भी अपने आर्य भाइयों का एक बात की तरफ ध्यान आकर्षित करना जरूरी है यह प्रायःकहा जाता है और इसमें सचाई भी जरूर है कि हममें ' परमतसहिष्णुता की कमी होती है। हम कई बार अपने देश भाइयोंसे केवल मजहबी मतभेद के कारण घृणा करने लगते हैं और लडने झगडने तक लगते है। यह त्रुटि बडी आसानी से दूर की जा सकती है और हमें जरूर दूर कर डालनी चाहिये। ' मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ' का वैदिकसन्देश रखने वालों को क्या यह भी बतलाने की जरूरत है कि धर्म का प्रसार प्रेम से ही होता है। अस्तु। हम देशके सब भाइओं को अपनी मातृभूमि के लिये प्रेम संबंध कर मिलजाना चाहिये और इसे लिये अपना सब कुछ बलि चढा देना चाहिये तथा और बलि की जरूरत हो तो उसे चढाने के लिये भी तैय्यार करना चाहिये।

अगला कदम है सार्वभौम प्रेम+संसार के सब मनुष्योंसे प्रेम मनुष्य - जातिसे प्रेम ॥ हमारी देशभक्ति दूसरे देशों से द्वेष के लिये नहीं। इस समय जो जगत् में एक देश भक्ति के नाम पर दूसरे देश को हानि पहुंचा रहा है, दूसरी जाति को पीडित कर रहा है इस द्वेष भाव को दूर करनेका सामर्थ्य भी इसी वेदाज्ञा के पालन में है, और इसकी महान जिम्मेवारी वैदिक धर्मों के मानने वाले पर है। हमारा देशप्रेम जगत्प्रेम के विरुद्ध न होवे यह हमें ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये हमें और भी अधिक बलिदान करने की जरूरत होगी, पर इससे संसार का परम लाभ होगा। यह आर्यसमाज का कर्तव्य है कि वह अपनी देशभक्ति में परदेशद्वेष न आने पावे। अंग्रेज फ्रेंच या जापानी भी हमारे भाई है, वे मनुष्य जाति-

में होने से हमारे भाई हैं, जगन्माता के पुत्र होने की हैसियत से हमारे भाई हैं। तभी हम वैदिक धर्म को सार्वभौम कह सकेंगे और कुछ महत्त्व के साथ यह प्रार्थना कर सकेंगे कि " मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।"

परन्तु मनुष्यमात्र तक पहुंच कर भी कोई प्रेमविस्तार की अवधि नहीं होजाती। वेदने तो कहा है ' भूतानि ' अर्थात् सब प्राणी, केवल मनुष्य नहीं। सब प्राणिमात्र में हमारा प्रेम होना चाहिये। पशु पक्षी आदि की जानको भी अपने जैसा समझना चाहिये। यहां तक अनुभव करना ' वैदिक धर्म ' की ही विशेषता है। कहते हैं कि एक योरोपीय पुरुषने बंगाल के बडे दुष्काळ में आश्चर्यसे देखकर कहा था, कि ये लोग भूखे मरते जाते हैं, परन्तु पशु पक्षियों को मारकर खाकर अपना जीवन बचाने की चेष्टा तक नहीं करते। यह घुसे हुए वैदिक धर्मके अवशेष का ही चिन्ह था। जहां पशुओं का मारना दैनिक कार्य है वहां के लोगों को आश्चर्य होना स्वाभाविक है। परन्तु वेद में तो सब जगह ' द्विपाद चतुष्पाद' के भले की इकट्ठी प्रार्थनायें होती हैं। बिचारे पशु-पक्षी हमसे लडकर भिडकर कुछ नहीं ले सकते, बहुत कुछ हमारी दयापर है अत एव इन्हें प्रतिदिन हमें ही देना चाहिये यह वेद हमें सिखाता है। गोरक्षा के धर्म होने में यही रहस्य है। वहां गौ सब इन दीन प्राणिओं की प्रतिनिधि होती है। कहते हैं कि स्वामी दयानन्दजी को एक बार एक आदमीने देखा कि उनके कलम पर मक्खी बैठगयी तो उन्होंने लिखना बन्द रखा जब तक कि वह स्वयं उड न गयी। स्वामी रामतीर्थ सांपको भी भाई कह के पुकारते थे। अमेरिकन एमर्सन मिडों के छत्ते के पास रहता था। मतलब यह है कि प्राणिमात्र के अन्दर मित्रदृष्टि होनी चाहिये। अपने प्रेम से जगत् को भर देना चाहिये। प्राणी ही क्यों कोई भी वस्तु (भूत) ऐसी नहीं होनी चाहिये जहां कि हम प्रेम से न देख सकें। भूत का असली अर्थ तो उत्पन्न हुई हुई एक वस्तु है। महात्मा गण संसार की एक घटनामें भी, दुःखमें भी प्रेम ही करते हैं। उन्हें हरएक वस्तुमें हरएक बातमें परमात्मा ही दिखायी होते हैं — और वे सदा प्रेम ही करते हैं। यह स्वार्थ को, कामना को सर्वथा त्याग देनेसे स्थिति प्राप्त होती है। जब कि सब स्वार्थो की बाधाओं को दूर कर प्रेम का सूर्य जब जगत् में व्याप जाता है उस अवस्था का ही वर्णन वेद में किया है कि —

तत्र को मोहः कः शोक एकत्व-
मनुपश्यतः।

आशा है हम भी स्वार्थ को नष्ट करते हुवे जहां तक पहुंच चुके हैं उसके आगे प्रेम को विकसित करनेका यत्न करेंगे। और इस आदर्श को कभी नहीं भूलेंगे कि—

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

आसन ।

द्वितीय वार छप कर तयार है ।

आसनों के संबंधमें कई लेख इसमे अधिक छापे हैं ।

पहिली वार की अपेक्षा इसमें डेढ गुणा पृष्ठ अधिक हैं।

चित्र भी अधिक दिये हैं ।

पुस्तक सजिल्द बनाई है ।

कागज छपाई और जिल्द अत्यंत उत्तम है ।

मूल्य पाहिलेके समानही केवल २) रु. है ।

डाकव्यय अलग ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

ऋषि-तर्पण।

१ आज ऋषि तर्पण करने की प्रतिज्ञा कीजिये।

२ वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदोंका पढना पढाना और सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।

३ जो द्विज वेदका अध्ययन छोड कर अन्य कार्यमें परिश्रम करता है, वह जीता हुआ ही, अपने वंशजोंके साथ, शूद्रत्वको प्राप्त होता है। (मनु. २।१६८)

यदि आपको वेदका अध्ययन करना है तो निम्नलिखित पुस्तक आजही लीजिये—

वेद स्वयं शिक्षक। प्रथम भाग मू. १॥)
,, ,, ,, द्वितीय भाग १॥)
वैदिक अग्निविद्या ... ... १॥)
रुद्र देवता परिचय ... ... ॥)
ऋग्वेदमें रुद्रदेवता ... ... ॥=)
केन उपनिषदकी व्याख्या ... १।)

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)